उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

CLPS - 03
पशुपालन : प्रबन्धन, प्रजनन एवं पशु रक्षा

खण्ड

01

गौवंशीय नस्ले, चयन एवं प्रजनन पद्धतियाँ

इकाई-1

दुधारू पशु एवं उनकी नस्लें

इकाई-2

दुग्ध उत्पादन के लिए डेयरी पशुओं का चयन

इकाई-3

पशु प्रजनन की पद्धतियाँ

परामर्श-समिति

प्रो0 केदार नाथ सिंह यादव	**कुलपति - अध्यक्ष**
डॉ0 हरीशचन्द्र जायसवाल	**कार्यक्रम संयोजक**
डॉ0 रत्नाकर शुक्ल	**कुलसचिव - सचिव**

परिमापक

प्रो0 जगदीश प्रसाद — संकाय प्रमुख, पशुपालन एवं पशु चिकित्सा संकाय इलाहाबाद एग्रीकल्चर युनिवर्सिटी, इलाहाबाद

सम्पादक

प्रो0 आर0 के0 यादव — अवकाश प्राप्त प्राचार्य एवं विभागाध्यक्ष पशुपालन एवं डेरी विज्ञान विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी

CLPS - 03 पशु पालन : प्रबन्धन, प्रजनन एवं पशु रक्षा

लेखक मंडल

खण्ड : एक	:	डॉ0 राम प्रवेश, तकनीकी सहायक, डॉ0 जयसिंह से संबद्ध पशुपालन एवं डेरी विज्ञान काशी हिन्दू-विश्व विद्यालय, काशी
दो	:	डॉ0 राम प्रवेश, तकनीकी सहायक, डॉ0 जयसिंह से संबद्ध पशुपालन एवं डेरी विज्ञान काशी हिन्दू-विश्व विद्यालय, काशी
तीन	:	डॉ0 शीतला प्रसाद वर्मा, वरिष्ठ प्रवक्ता (पशुपालन एवं दुग्ध विज्ञान) कुलभास्कर आश्रम स्नातकोत्तर महाविद्यालय, इलाहाबाद
चार	:	डॉ0 शीतला प्रसाद वर्मा, वरिष्ठ प्रवक्ता (पशुपालन एवं दुग्ध विज्ञान) कुलभास्कर आश्रम स्नातकोत्तर महाविद्यालय, इलाहाबाद
पाँच	:	डॉ0 शीतला प्रसाद वर्मा, वरिष्ठ प्रवक्ता (पशुपालन एवं दुग्ध विज्ञान) कुलभास्कर आश्रम स्नातकोत्तर महाविद्यालय, इलाहाबाद

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद की ओर से डॉ. रत्नाकर शुक्ल, कुलसचिव द्वारा प्रकाशित, तथा नितिन प्रिन्टर्स, 1, पुराना कटरा, इलाहाबाद द्वारा मुद्रित। 2006 फोन - 2548837

खण्ड एक का परिचय : गौवंशीय नस्लें, चयन एवं प्रजनन पद्धतियाँ

भारत एक कृषि प्रधान देश है जहाँ की जनता की मुख्य जीविका कृषि तथा पशुपालन है। भारत में 222 मिलियन गौवंश, 95 मिलियन भैस तथा 124 मिलियन बकरियां पायी जाती हैं जो कि पूरे विश्व के गौवंश का 16% तथा भैसों का 56% है। भारत विश्व में दुग्ध उत्पादन में प्रथम स्थान पर है, लेकिन प्रति पशु उत्पादकता 987 किग्रा प्रति ब्यात है।

भारत में 80% गौवंशीय पशु छोटे कद, कम भार वाले तथा देशी पशुओं की श्रेणी में आते जबकि केवल 20% विशुद्ध नस्ल (30 नस्ले गाय की, 7 भैस की) के पशु है जिनका लम्बे समय तक चयन और प्रजनन कर विभिन्न क्षेत्रों में प्रतिस्थापित किया गया है। भारत में दुग्ध उत्पादन मुख्यतः गाय, भैसों तथा बकरियों से प्राप्त होता है। प्रजनन, पोषण, प्रबंधन और स्वास्थ्य रक्षा पशु उत्पादन प्रणाली के चार स्तम्भ है। इस खण्ड में पशु प्रजनन एवं प्रबंधन का वर्णन किया जा रहा है।

पशु प्रजनन पशुओं के आनुवंशिकी तथा उनकी उत्पादन क्षमता में सुधार लाने का महत्वपूर्ण स्रोत है। पशुओं में सुधार मुख्यतः उत्तम आनुवंशिक क्षमता वाले नर व मादा पशुओं का चयन करके संतान पैदा करने के लिए किया जाता है जिसे पशु प्रजनन कहते हैं। इस खण्ड में पशुओं की विभिन्न नस्लों में से अच्छी नस्लों का चयन तथा उनको विभिन्न प्रजनन प्रणालियों के द्वारा प्रजनन कराने से प्राप्त लाभों व हानियों के बारे में बताया गया है।

इस खण्ड को अध्ययन की सुविधा के लिए तीन इकाईयों में बाँटा गया है-

(1) दुधारू पशुओं की नस्लें

(2) दुग्ध उत्पादन के लिए पशुओं का चयन

(3) पशु प्रजनन की पद्धतियाँ

इकाई 1 : दुधारू पशु एवं उनकी नस्लें

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 दुधारू पशु (डेयरी पशु)

1.3.1 परिभाषा

1.3.2 गायो की प्रमुख भारतीय नस्लें

(अ) दुधारू नस्लें

1. साहीवाल
2. लाल सिंधी
3. गिर
4. देवनी

(ब) द्विकाजी नस्लें

5. निमाड़ी
6. डांगी
7. हरियाणा
8. मेवाती
9. राठी
10. अंगोल
11. काकरेज
12. थारपारकर

(स) भारवाही नस्लें

1.3.2.2 विदेशी गायों की नस्लें

1. होलस्टीन फ्रिजियन
2. जर्सी
3. ब्राउनस्विस
4. आयर शायर

1.3.2.3 संकर गायों की नस्लें

1. करन स्विस
2. करनफ्रिज
3. जरसिंध

4. सुनंदिनी
5. फ्रिसवाल

1.3.2.4 भैसों की नस्लें

1. मुर्रा
2. नीली-रावी
3. जाफराबादी
4. सूरती
5. मेहसाना
6. नागपुरी
7. भदावरी

1.3.2.5 बकरियों की भारतीय नस्लें

1. बरबरी
2. जमुनापारी
3. बीतल
4. सूरती
5. सिरोही
6. मारवाड़ी
7. मेहसाना
8. जखराना
9. ओस्मानाबादी
10. अंगोरा

विदेशी बकरियों की नस्लें

11. एंग्लो-नूबियन
12. अल्पाइन
13. टोगेनबर्ग
14. सानन

1.3.2.6 अन्य दुग्ध उत्पादक प्रजातियाँ

1. याक
2. मिथुन

1.4 सारांश

1.5 उपयोगी पुस्तकें

1.6 संबंधित प्रश्न

1.1. प्रस्तावना (Introduction)

भारत एक कृषि प्रधान देश है। यहाँ की लगभग 70% जनसंख्या गांवों में रहती है तथा इनका मुख्य व्यवसाय कृषि एवं पशुपालन है। पशुपालन मुख्यत: लघु और सीमांत किसानों, भूमिहीन श्रमिकों द्वारा किया जाता है। औसतन 2-3पशु प्रति परिवार रखे जाते हैं। ये पशु खेती के उपउत्पादों तथा फसल अवशेषों पर निर्भर होते हैं। कृषि भूमि सीमित है तथा जनसंख्या वृद्धि के कारण भूमि का बार-बार बंटवारा होकर जोत का आकार छोटा होता रहता है। अत: प्रति व्यक्ति खेती योग्य भूमि का आकार काफी कम हो गया है। इन परिस्थितियों में डेयरी व्यवसाय में ही उन्नति की अच्छी सम्भावना है।

भारत दुग्ध उत्पादन में विश्व में प्रथम स्थान पर है। यहाँ पर विश्व की कुल पशु संख्या में से 16% गायें, 56% भैंसें तथा 20% बकरियाँ हैं। इनमें से 80% मवेशी छोटे कद, कम भार वाले तथा देशी पशुओं की श्रेणी में आते हैं जबकि शेष 20% विशुद्ध नस्ल के पशु हैं जो लम्बे समय तक चयन और प्रजनन द्वारा विकसित हुए है। भारत में दुग्ध उत्पादन के लिए मुख्यत: भैंसों, गायों और बकरियों को पाला जाता है। इन पशुओं की विभिन्न नस्लें विभिन्न कृषि-जलवायवीय क्षेत्रों के लिए प्रयुक्त होती है। अत: संसाधनों की उपलब्धता, क्षेत्र की उपयुक्तता, पोषण स्तर के अनुसार किसान दुधारू पशुओं की नस्लों का चुनाव कर अत्यधिक उत्पादन प्राप्त कर सकते हैं।

1.2. उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई का उद्देश्य पशुपालकों को निम्नलिखित विषयों से संबंधित विस्तृत जानकारी उपलब्ध कराना है –

(i) डेयरी पशुओं – गाय, भैंस व बकरी आदि की जानकारी।

(ii) गायों, भैंसों, बकरियों की मुख्य नस्लें व वर्णसंकर पशुओं की जानकारी

(iii) दुधारू पशुओं की आर्थिक दृष्टि से लाभप्रद गुणों का मूल्यांकन।

1.3. गोवंशीय नस्लें (Cattle breeds)

1.3.1 परिभाषा (Definition) –

पशु शरीर की कुल ऊर्जा का 25% दुग्ध ऊर्जा के रूप में बदलने की क्षमता वाले पशु दुधारू पशु माने जाते हैं।

भारत में डेयरी पशुओं में मुख्य रूप से गाय, भैंस व बकरी रखी जाती है तथा देश के कुल दुग्ध उत्पादन का अधिकांश भाग इन्हीं से प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त बहुत कम मात्रा में दूध भेंड़, याक, मिथुन, ऊँट आदि से भी प्राप्त होता है। देश में 1951 में दुग्ध उत्पादन 17 मिलियन टन था, 2005 में बढ़कर 98.3 मिलियन टन हो गया है। यह विश्व के कुल दुग्ध उत्पादन का 13.5% है और भारत विश्व में दुग्ध उत्पादन में प्रथम स्थान पर है। आज देश के कुल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP) का 5.9% दुग्ध से आता है।

भारत में पशुओं की संख्या 222, गाय 95 मिलियन भैंस, 124 मिलियन बकरियाँ है, (डेरी इयर बुक, 2006)। देश के कुल दुग्ध उत्पादन का 45% गायों से, 52% से तथा 3% बकरियों व अन्य प्रजातियों के पशुओं जैसे याक, मिथुन, ऊँट, भेंड़ आदि से होता है। देश में प्रति व्यक्ति दूध का उपलब्धता 1951 में 124 ग्राम से बढ़कर 2006 में 249 ग्राम प्रतिदिन होने का अनुमान है।

भारत में कुल गायों की संख्या का 7.3% संकर नस्ल की गायें हैं जो 1996 में देश के कुल गायों के दुग्ध उत्पादन में 22% का योगदान कर रही थी। अत: संकर नस्ल के पशुओं का दुग्ध उत्पादन बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान है।

1.3.2.1 गायों की प्रमुख भारतीय नस्लें –

पशुओं का वह समूह जिनको उत्पत्ति, शरीर, बनावट तथा शरीर की आकारिकी समान हो, नस्ल कहलाता है। ये नस्लें पीढ़ी दर पीढ़ी स्थानीय वातावरण के प्रति अपनी अनुकूलनता स्थापित करने के फलस्वरूप विकसित हुई है। अधिकांश पशुपालक उच्च दुग्ध उत्पादन क्षमता वाले पशुओं के क्रय को वरीयता देते हैं। अत: देश की गायों, भैंसों व बकरियों की प्रमुख विशुद्ध नस्लों की जानकारी होना पशुपालक के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

भारत में गायों की 30 मान्यता प्राप्त विशुद्ध नस्लें हैं जो कुल गायों की जनसंख्या की 18% है, जबकि शेष 82% गायों की संख्या मान्यता प्राप्त श्रेणी में नहीं आती है अर्थात् इनमें किसी नस्ल विशेष के लक्षण नहीं होते हैं। इस प्रकार अधिकांश गोवंशीय पशु कम दूध देने वाले हैं। इनको खेती के कार्यों हेतु बैल पैदा करने के लिए रखा जाता है। सामान्यत: भारत में पायी जाने वाली गायों को उनकी उपयोगिता के अनुसार निम्नलिखित वर्गों में वर्गीकृत किया गया है –

(अ) दुधारू नस्लें – साहीवाल, सिंधी, गिर, देवनी

(ब) द्विकाजीय नस्लें – हरियाणा, काकरेज, अंगोल, थारपारकर, मेवाती, राठ, कृष्णाघाटी, निमाड़ी

(स) भारवाही नस्लें – खेरीगढ़, गंगातीरी, अमृतमहल, हल्लीकर, खिल्लारी, कंगायाम, पंवार, सीरी, नागौरी, केनकंटा, मालवी, बछौर, हिसार,

(द) विदेशी नस्लें – होल्स्टीन फ्रिजियन, जर्सी, ब्राउनस्विस, आयरशायर, रेड डेन

(ध) संकर नस्लें – करनस्विस, करनफ्रिज, जरसिंध, फ्रिजवाल, सुनंदिनी।

भारतीय गायों की दुधारू नस्लें तथा द्विकाजीय नस्लें ही दुग्ध उत्पादन की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। अत: इन्हीं दो वर्गों की गायों का वर्णन आगे किया जा रहा है –

(अ) गायों की दुधारू नस्लें –

1 साहीवाल –

मूल स्थान – पाकिस्तान का मांटगोमरी जिला इस नस्ल का मूल स्थान है। भारत में इस नस्ल के पशु पंजाब के फिरोजपुर तथा राजस्थान के श्रीगंगानगर जिले में पाये जाते हैं।

लक्षण (Characters) – यह भारतीय उपमहाद्वीपीय की सबसे अच्छी नस्ल है। इसकी ऊपर से नीचे तक फैला भारी भरकम शरीर, छोटी टांगें, पतली ढीली-ढाली खाल, चौड़ा माथा, छोटे

और मोटे सींग इसकी विशेषताएं हैं। लालीयुक्त भूरा रंग होता है चाबुक जैसी लम्बी पूंछ धरती छूती रहती है। मध्यम आकार के कान, बड़ा कुकुद, गलकम्बल, ढीला मुतान, बड़ा अयन होते हैं। स्वभाव अत्यंत सीधा व सरल होता है। इस नस्ल के बैल बहुत ही सुस्त होते हैं। इसकी दुग्ध उत्पादन क्षमता 5-10 किग्रा. प्रतिदिन 1800 से 2500 किग्रा. प्रति ब्यात होती है।

2. सिंधी –

मूल स्थान – इस नस्ल के पशु पाकिस्तान के सिंध प्रांत के कराची तथा हैदराबाद में पाये जाते हैं। भारत में इस नस्ल के पशु पंजाब व देश के अन्य स्थानों पर कई बड़े-बड़े डेयरी फार्मों पर रखे गये हैं।

लक्षण – मध्यम आकार का शरीर, माप के अनुपात में उत्तम व गठीला शरीर होता है। रंग गहरा लाल तथा हल्के पीले से लेकर कत्थई सा होता है। गलकम्बल भारी-भरकम और गले के नीचे तक लटकने वाला होता है। पशु मांसल और ढीले होते हैं। अयन बड़े होते हैं। सिर औसत आकार का तथा सुविकसित होता है। सींग मोटे व औसत आकार के होते हैं जिनकी नोक गुट्ठल होती है व मुतान पूर्ण विकसित तथा कान नीचे झुके हुए होते हैं। गायों की दूध देने की क्षमता प्रति 300 दिन के ब्यात में 1600 किग्रा. तक होती है। बैल छोटे होने पर भी कृषि कार्यों व भार वहन के लिए काफी अच्छे माने जाते हैं।

3. गिर –

मूल स्थान – भारत के गुजरात राज्य का काठियावाड़ क्षेत्र इस नस्ल का मूल स्थान है। इस नस्ल के पशु गुजरात से लगे महाराष्ट्र व राजस्थान में भी पाये जाते हैं।

लक्षण – यह भारत की सबसे पुरानी नस्ल है। शरीर सुव्यवस्थित व गठीला होता है। ललाट सीधा एवं उभरा होता है। लम्बे लटके हुए घुमावदार कान, लम्बे भारी सींग, वक्रसींग सिर पर पीछे की ओर मुड़े रहते हैं। इनका रंग सामान्यत: सफेद होता है जिस पर चारों तरफ गहरे लाल या कत्थई रंग के धब्बे होते हैं। गलकम्बल बड़ा होता है। कुल्हे की हड्डियां उभरी हुई होती है। इस नस्ल के पशु अच्छे दुग्ध उत्पादक हैं। प्रति ब्यात (300 दिन में) लगभग 1200 से 1800 किग्रा. दूध का उत्पादन इस नस्ल के पशुओं द्वारा होता है।

4. देवनी –

मूल स्थान – इस नस्ल का मूल जन्म स्थान आंध्र प्रदेश का हैदराबाद जिला (उत्तर-पश्चिम क्षेत्र) है।

लक्षण – यह नस्ल गिर, नस्ल के पशुओं से मिलती जुलती है। काला या लाल रंग शरीर पर सफेद धब्बो के साथ, गिर के समान कान लटके हुए, चेहरा पतला, सींग कुण्डलाकार, चौड़ी छाती, गलकम्बल विकसित, मुतान बड़ा व लटका हुआ, पूंछ लम्बी, मजबूत पैर, पसलियाँ फैली हुई, सुदृढ़ शरीर, अयन सामान्य सुडौल। बैल कृषि कार्यों के लिए उपयुक्त होते हैं। प्रति ब्यांत (300 दिन में) इनका दुग्ध उत्पादन 1150 किग्रा. तक होता है। इन पशुओं में सीधे सींग तथा छोटे कान अवांछनीय माने जाते हैं।

(ब) दुकाजी नस्लें –

5. निमाड़ी –

मूल स्थान – यह मध्य प्रदेश के नर्मदा नदी के निमाड़ क्षेत्र (खरगौन - जिला) में मूलरूप

से पाये जाते हैं।

लक्षण – शरीर लम्बा और पीठ एकदम सीधी होती है। सिर मध्यम आकार का और माथा कुछ उभरा हुआ होता है। रंग लाल होता है और बीच में बड़े-बड़े सफेद धब्बे दाग रहते हैं। लटकता हुआ गलकम्बल, पूंछ लम्बी और पतली जमीन से छूती रहता है। बैल बहुत सीधे तथा अच्छा कार्य करने वाले होते हैं। यह नस्ल गिर तथा खिल्लारी की मिश्रण है। प्रति ब्यात 450 से 500 किग्रा. प्रति पशु दूध का उत्पादन होता है।

6. डांगी –

मूल स्थान – इस नस्ल का मूल स्थान गुजरात का डांग क्षेत्र है। इसी के नाम पर इस नस्ल का नाम डांगी रखा गया है। इस नस्ल के पशु महाराष्ट्र के अहमदनगर, नासिक तथा कोलाबा जिलों में भी पाये जाते हैं।

लक्षण – इस नस्ल के पशुओं का रंग काला व सफेद चित्तीदार, मध्यम आकार का शरीर, सिर चौड़ा, ललाट उठा हुआ, चेहरा लम्बा, कान छोटे, सींग मोटे पर नुकीले नहीं, गर्दन छोटी, कमर सीधी, गलकम्बल सलवटदार लटकता हुआ, टांग छोटी व मजबूत, अयन लम्बा व ठोस। बैल कृषि कार्यों के लिए अच्छे होते हैं। मादा पशु औसतन 500 किग्रा. दूध प्रति ब्यात देती है। इस प्रकार ये कम दुधारू होती है।

7. हरियाणा

मूल स्थान – इस नस्ल का मूल स्थान हरियाणा के रोहतक, हिसार, करनाल तथा गुड़गांव जिले माने जाते हैं। यह पशु दिल्ली, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, राजस्थान के उत्तरी भागों में भी पाये जाते हैं।

लक्षण – पशुओं का शरीर काफी अनुपातित होता है और शरीर सामान्य रूप से लम्बा तथा देखने में सुडौल व सुदृढ़ होता है। सिर ऊँचा उठा हुआ, सींग छोटे और ऊपर फिर भीतर की ओर मुड़े हुए होते हैं। रंग सफेद या हल्का धूसर रहता है। चेहरा लम्बा और पतला, माथा काला हड्डीदार और सिर का गोल भाग उभरा होता है। कान अपेक्षाकृत छोटे और नुकीले होते हैं। गलकम्बल लटकता हुआ, गर्दन लम्बी व पतली, पैर लम्बे, पूंछ टखनों तक, अयन विकसित, दुग्ध शिरायें भली-भाँति विकसित, पूंछ का छोर काला। पूंछ पिछले पैरों के जोड़ और भूमि के बीच आधी दूरी तक लटकती रहती है। बैल कृषि कार्यों तथा बैलगाड़ी खींचने के लिए काफी अच्छे होते हैं। यह भारतीय उपमहाद्वीप की सबसे अच्छी दुकाजी नस्ल है। इस नस्ल की गायें प्रति ब्यात 1500 किग्रा. दूध देती है।

8. मेवाती –

मूल स्थान – यह नस्ल पश्चिम अलवर तथा भरतपुर (राजस्थान) में पायी जाती है। वैसे इस नस्ल के पशु पश्चिमी उत्तर प्रदेश के मथुरा में भी पाये जाते हैं।

लक्षण – यह गिर, राठ और नागौरी की मिश्रण है। शरीर लम्बा और पीठ एकदम सीधी होती है। सिर मध्यम आकार का और माथा कुछ उभरा हुआ होता है। रंग सफेद होता है। बीच-बीच में बड़े-बड़े कुछ भूरे रंग के धब्बे सिर, गला व कंधा पर पाये जाते हैं। सिर से कुछ पीछे की ओर मुड़ जाते हैं। मुतान लटकता, कुकुद तथा गलकम्बल काफी विकसित होते हैं। हरियाणा की अपेक्षा यह पशु ढीले शरीर वाले होते हैं परन्तु सिर ऊंचा होता है। इस नस्ल के बैल शक्तिशाली होते हैं जो भारी हल चलाने

व भारवाहन के लिए काफी अच्छे होते हैं। इस नस्ल की गायें 3.5 से 4.5 किग्रा. प्रतिदिन व प्रति ब्यात 700-800किग्रा. दूध देती है।

9. राठी –

मूल स्थान – पशु अलवर (राजस्थान) के उत्तरी पश्चिमी भाग में पाये जाते हैं।

लक्षण – इनका शरीर हरियाणा पशुओं से मिलता-जुलता है। छाती हरियाणा गाय से छोटी, अधिक मजबूत और गहरी। पिछला भाग अच्छी तरह से विकसित होता है। पूँछ अधिकतर भारतीय किस्मों में ऊँची रहती है। बैल शक्तिशाली लगते हैं पर भारी काम नहीं कर सकते हैं। इनका रंग सफेद तथा भूरा होता है। नरों के गर्दन व कंधे गहरे रंग के होते हैं। गायों में अयन पूर्ण विकसित होता है व अच्छा दुग्ध का उत्पादन करती है। इनका औसतन दुग्ध उत्पादन 1000 किग्रा. प्रति ब्यात पाया जाता है।

10. अंगोल –

मूल स्थान – इस नस्ल का मूल स्थान आंध्र प्रदेश का प्रकाशम जिला माना जाता है।

लक्षण – इनका शरीर लम्बा, गर्दन छोटी तथा टांगें सुदृढ़ होती है। इस नस्ल के पशु प्राय: सफेद रंग के होते हैं। गर्दन व कूबड़ भूरे रंग के धब्बे, चेहरा लम्बा, ललाट चौड़ा, सींग छोटे, गर्दन छोटी, गलकम्बल मोटी, अयन मध्यम आकार का, पूंछ लम्बी होती है। अंगोल भारत की अच्छी नस्लों में से एक है। बैल शक्तिशाली तथा भारी हल चलाने व बैलगाड़ी खींचने के कार्य के लिए उत्तम होते हैं। गायों में अयन सुविकसित होता है। गायें 4 से 6 किग्रा. प्रतिदिन दूध देती है तथा प्रति ब्यात 1000 किग्रा. तक दूध का उत्पादन होता है। इस नस्ल के पशु श्रीलंका, फिजी, हिन्दचीन, इंडोनेशिया, मलेशिया तथा अमेरिका व ब्राजील में नस्ल सुधारने के लिए आयातित किये जाते हैं। टेक्सास अमेरिका में विकसित प्रसिद्ध गाय की नस्ल सन्टा जरट्रुडिश (Santa Gertrudis) के लिए अंगोल नस्ल का उपयोग किया जाता है।

11. कांकरेज –

मूल स्थान – इस नस्ल का मूल जन्म स्थान गुजरात का कच्छ दक्षिण-पूर्वी रन का क्षेत्र है।

लक्षण– यह नस्ल भारत की सबसे भारी नस्ल के रुप में प्रसिद्ध है। इस नस्ल के पशु बड़े शक्तिशाली व फुर्तीले होते है। इनका आकार बड़ा, ललाट चौड़ा तथा मध्य में थोड़ा सा दबा हुआ होता है। इसके सींग मजबूत, मोटे, बड़े तथा ऊपर की ओर दूर-दूर फैले रहते हैं। सींगो पर कुछ दूरी तक खाल चढ़ी रहती है। पशुओं की छाती चौड़ी, पीठ सीधी, कुकुद विकसित, मुतान लटकने वाला तथा पूंछ टखने तक लटकती हुई सिरे पर काले गुच्छे होते हैं। इन पशुओं का रंग चमकीला स्लेटी भूरा होता है। नर पशुओं का रंग रुपहला, धूसर या काला होता है। पैरो की गुमची का रंग सदा काला और अगली तथा पिछली टाँगों पर काले निशान रहते है। गायो के निशान अपेक्षाकृत हल्के रंग के होते हैं। गायो में अयन विकसित होता है। गाये अच्छी दूध उत्पादक होती है व प्रति ब्यात लगभग 1400 किग्रा दूध देती है। बैल शक्तिशाली, गाड़ी और हल खींचने के लिए उपयुक्त होते है। ये पशु लैटिन अमेरिकी देशों और अमेरिका के दक्षिणी राज्यों में नस्ल सुधार कार्यक्रमों के लिए भेजें गये है। ब्राजील में यह नस्ल काफी लोकप्रिय है। इस नस्ल के पशु सवाई चाल के लिए प्रसिद्ध है।

12. थारपारकर–

मूल स्थान– इस नस्ल का मूल जन्म स्थान पाकिस्तान के सिंध प्रान्त के थारपारकर जिला,

गुजरात में कच्छ का रणक्षेत्र है।

लक्षण– शरीर मध्यम आकार का उत्तम और गठीला, अंग छोटे व सीधे और जोड़ मजबूत होते है। चेहरा सामान्य रुप से लम्बा होता है। सिर न बड़े और न छोटे छोते है। कान लम्बे, गर्दन पतली, गलकम्बल विकसित सिलवट वाला, त्वचा पतली, कमर चौड़ी, मुतान सामान्याकार व लटका हुआ, टांगे छोटी व मजबूत, पूंछ पतली, अयन पूर्ण विकसित, दुग्ध शिरायें स्पष्ट, पूछ का छोर काला होता है। शरीर का रंग प्राय: सफेद एवं भूरा (धूसर) होता है। गाये दुधारु होती है तथा प्रति ब्यात 1800 से 2000 किग्रा दूध देती है। बैल कृषि कार्यो के लिए अच्छे होते है।

(स) भारवाही नस्लें–

इन नस्लों की गायें बहुत कम मात्रा में दूध देती है। बैल कृषि कार्यो एवं भारवाहन के लिए काफी अच्छे होते है। भारत में अभी भी 60-70% किसान कृषि कार्यो के लिए बैलो पर ही निर्भर करते है। भारवाही नस्लो में–कांगायाम, अमृतमहल, गंगातीरी, खेरीगढ़, केनकधा, खिल्लारी, हल्लीकर, बछौर, सीरी, पंवार प्रमुख नस्लें हैं।

1.3.2.2 विदेशी गायों की प्रमुख नस्लें–

भारतीय (देशी) नस्लों की गायों का दुग्ध उत्पादन विदेशी नस्लों की अपेक्षा काफी कम होता है। इसीलिए भारत में देशी नस्लो की गायों में दुग्ध उत्पादन में वृद्धि के लिए संकर प्रजनन हेतु कुछ विदेशी नस्लो का प्रयोग किया जा रहा है। जो विदेशी नस्ले भारत में मुख्यत: दूध उत्पादन में प्रयोग लायी जा रही है उनका विवरण निम्नलिखित है–

1. होल्सटीन फ्रिजियन–

मूलस्थान– इस नस्ल की गायों का मूलस्थान हालैण्ड है।

लक्षण– इनका रंग सफेद व काला धब्बेदार होता है। सफेद रंग के काले धब्बे से लेकर पूरे काले रंग की गाय भी पायी जाती है। इस नस्ल के पशुओं की पूंछ का निचला हिस्सा हमेशा सफेद होता है। भारी भरकम शरीर होता है व इन पशुओं में चारे खाने की क्षमता अधिक होती है। इनका सिर बड़ा, लम्बा व पतला तथा सीधा होता है। गाय सामान्यत: शांत स्वभाव की होती है। वक्ष बड़ा, बड़ी छाती, मुतान ढीला, लम्बी पूछ, बड़ा विकसित अयन, पूर्ण स्पष्ट दूध शिरायें होती है। इस नस्ल के पशुओं का औसत शारीरिक भार 700 किग्रा (गाय का) तथा 1000 किग्रा (साँड़ का) होता है। इस नस्ल के पशुओं में कुकुद नहीं होता है। इस नस्ल के गायों का प्रति ब्यात औसतन दूध उत्पादन 7000 ली० तक पाया गया है। दूध में वसा की मात्रा 3.5 प्रतिशत तक होती है। इस नस्ल के साड़ों का प्रयोग देशी गायो के सुधार के लिए संकर प्रजनन हेतु देश के सभी हिस्सों में किया जाता है।

2. ब्राउन स्विस–

मूलस्थान– यह नस्ल मुख्यत: स्विटजरलैण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों में विकसित हुई जो धीरे-धीरे विश्व के लगभग सभी देशों में फैल गयी।

लक्षण– होल्सटीन फ्रिजियन नस्ल के बाद में विश्व में इस नस्ल का दूसरा स्थान है। यह नस्ल दूध, मांस व भार-वाहन के लिए अच्छी मानी जाती है। इस नस्ल के पशुओं का शरीर बड़ा,

कोणाकार होता है। इस नस्ल के पशुओं का रंग कत्थई, गाढ़ाभूरा होता है। परन्तु हल्के से भूरे रंग के पशु भी पाये जाते हैं। इनका रंग पूरे शरीर में लगभग एक जैसा ही होता है परन्तु कभी-कभी अयन तथा घुटने के नीचे टांगे सफेद होती है। सींग मध्यम तथा सीधे ऊपर की ओर तक थोड़े से बाहर की ओर निकले रहते हैं। नर पशु का शारीरिक भार 900 से 1000 किग्रा० तथा मादा का 600-700 किग्रा का होता है। गायों का औसतन उत्पादन लगभग 5000 किग्रा होता है। इस नस्ल के पशु अत्यन्त सीधे होते है। इसमें वसा 3.5-4% होता है।

3. जर्सी–

मूलस्थान– इस नस्ल का मूल जन्म स्थान ग्रेट ब्रिटेन का जर्सी द्वीप माना जाता है।

लक्षण– यह नस्ल विश्वभर में दुधारु, नस्ल के रूप में प्रसिद्ध है। शरीर सुगठित, मध्यम आकार, कोणाकार होता है। इस नस्ल के पशुओं का रंग हल्का लाल, काला व सफेद धब्बेदार भी होता है। पूंछ का निचला हिस्सा काला एवं सफेद होता है। थूथन काली होती है। पीठ सीधी तथा पुट्ठे चौड़े व समतल होते है। यह इस नस्ल की मुख्य पहचान है। पेट बड़ा, अयन बड़ा, विकसित, सिर अपेक्षाकृत हल्का होता है। इस नस्ल का गायें सीधी, सरल व शांत स्वभाव की होती है। इन पशुओ का शारीरिक भार नर का 600-700 किग्रा० व गायों का भार 400-500 किग्रा० तक होता है। इनका प्रति दुग्ध उत्पादन 4000 किग्रा होता है। दूध में वसा औसतन 5.30% तक पाया जाती है। इस नस्ल की गायों में कुकुद नहीं पाया जाता है। इस नस्ल की अच्छी गायों का अधिकतम दूध उत्पादन 11381किग्रा० तक होता है। इस नस्ल के पशु होल्सटीन फ्रिजियन तथा ब्राउनस्विस की तरह दुधारु पशु के रूप में विश्व के लगभग सभी देशों में फैली हुए हैं। इस नस्ल के साड़ों का प्रयोग संकर प्रजनन हेतु देश के पहाड़ी क्षेत्रों के लिए अत्यन्त उपयोगी व लाभदायी सिद्ध हुआ है।

4. आयरशायर–

मूलस्थान– इस नस्ल का मूल स्थान स्काटलैंड है।

लक्षण– इस नस्ल के पशुओं का शरीर बड़ा, सीधी कमर, समतल पुट्ठे, सिर छोटा, मोटा लम्बे मुड़े हुए सींग होता है। इनका रंग लाल या कत्थई या इन दोनों का मिश्रण होता है। इनका स्वभाव भड़कीला होता है। विकसित अयन, दुग्ध शिरायें स्पष्ट होती है। इन पशुओं का शारीरिक भार नर का 500-600 किग्रा तथा मादा का 400-500 किग्रा होता है। दूध उत्पादन प्रति ब्यात 4000 किग्रा होता है। दूध में 3.5% वसा होती है।

1.3.2.3 संकर गायों की नस्ले–

भारत की देशी नस्ले कम दूध देती है लेकिन ये पशु बीमारियों के प्रतिरोधी गुण, विपरीत जलवायु को सहन करने वाले गुण होते है। इनके लिए अच्छा दाना-चारा, बीमारियों पर नियंत्रण प्रबंध व्यवस्था व अच्छी जलवायु होना आवश्यक है। संकर नस्ल की बछिया 2.5-3.5 वर्ष में प्रथम बच्चा देती है तथा प्रतिवर्ष बच्चा देती रहती है जबकि देशी गाय की बछिया 3.5 वर्ष में पहली बार बच्चा देती है। इन्हीं सभी बातों को ध्यान में रखते हुए विदेशी नस्ल के साड़ों से देशी नस्ल की गायों का प्रजनन किया गया जिससे भारत में दूध उत्पादन में काफी वृद्धि हुई है।

प्रजनन की इस विधि में विदेशी देशो के उत्तम नस्ल के साड़ों से भारतीय नस्ल की गायों को गाभिन कराने से जो बच्चे पैदा होते हैं, कि संकर गायों में देशी व विदेशी रक्त 50प्रतिशत रखना सबसे

अच्छा परिणाम देता है जबकि जैसे-जैसे विदेशी रक्त का अनुपात बढ़ता है पर बीमारियों से लड़ने की क्षमता क्रमश: घटती जाती है तथा दूध उत्पादन में भी कोई विशेष वृद्धि नहीं होती है।

पर्याप्त मात्रा में हरा चारा, उचित प्रबंध व्यवस्था, पशु चिकित्सा सुविधा उपलब्ध होने पर संकर गायें 30-60%अधिक दूध उत्पादन करती है। विदेशी नस्ल व भारतीय नस्ल के बीच क्रास काकर निम्न नस्लें तैयार की गयी हैं।

1. करन स्विस– इस संकर नस्ल का विकास राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल, हरियाणा में ब्राऊन स्विस साड़ और साहीवाल गाय के संकरण से हुआ। यह साहीवाल की तरह की शारीरिक बनावट वाली तथा शरीर का रंग गहरा लाल होता है। इस नस्ल की गायें औसतन 32 माह में प्रथम बच्चा दे देती है तथा प्रति ब्यात लगभग 2564.7 किग्रा० दूध देती है। दूध में 4.2 से 4.5% वसा पायी जाती है।

2. करनफ्रिज– इस संकर गाय का विकास की गायें राष्ट्रीय डेयरी अनुसंधान संस्थान करनाल, हरियाणा में थारपारकर और होल्सटीन फ्रिजियन के संकरण से हुआ है। इस नस्ल के पशुओं के शरीर पर काले धब्बे होते है तथा कभी-कभी ललाट और चाँद (Poll) सफेद धब्बो के साथ पूरी तरह काला होता है। गायें 30 से 32 माह में प्रथम बच्चा दे देती है। दूध का उत्पादन 3700 किग्रा प्रति ब्यात होता है जिसमें 3.8 वसा होती है।

3. जरसिंध–इसका विकास लाल सिंधी x जर्सी के संकरण से कृषि संस्थान नैनी (Agricultural Institute, Naini, Allahabad) इलाहाबाद में किया गया। 3/8 और 5/8 जर्सी x लाल सिंधी को जरसिंध नाम दिया। यहीं पर 3/8-5/8ब्राउन स्विस x लाल सिंधी को ब्राऊनसिंध नाम दिया गया। जरसिंध का दूध उत्पादन 1557 से 1861 किग्रा प्रति ब्यात रहा है। यह केवल फार्मों तक सीमित है क्योंकि इस नस्ल के पशुओं की संख्या काफी है।

4. सुनंदिनी (Sunundini)– इस संकर गाय का विकास इन्डोस्विस प्रोजेक्ट 1963 केरल के अंतर्गत स्थानीय देशी पशुओं और ब्राउन स्विस के संकरण के फलस्वरूप हुआ। इसमें ब्राऊनस्विस का रक्त 62.5% होता है। गाय साधारण परिस्थितियों में 1351 किग्रा० प्रति ब्यात तथा 4.4 किग्रा० प्रतिदिन दूध देती है।

5. फ्रिसवाल (Frieswal)– इन गायों का विकास मिलिटरी डेयरी फार्म पर फ्रिजियन साहीवाल के क्रास से हुआ। इसका नाम फ्रिजवाल रखा गया। गायें 874 दिन पर प्रथम बच्चा देती है इस समय इनका शारीरिक भार 481 किग्रा होता है। 300 दिन के ब्यात में औसतन 3000 किग्रा० तथा 12.2 किग्रा० प्रतिदिन दूध देती है।

1.3.2.4 भैंसो की नस्लें –

भैसो की उत्पत्ति भारत में हुई है। वर्तमान पालतू भैसों पूर्वज बोसर्नी (Bos arni) है जो आज भी उत्तरपूर्वी भारत के आसाम और उससे लगे क्षेत्रो में जंगली अवस्था में पाये जाते है। विश्व में पायी जाने वाली भैंसे दो वर्गो में रखी जाती है– (1) जल भैंस (Water buffalo or River buffalo) तथा (2) दलदली भैंस (Swamp buffalo) इन दोनों का वैज्ञानिक नाम बुबैलस बुबैलिस (Bubalus babalis) है। दलदली भैंसे मुख्यत: मांस व भारवाहन के काम आती है तथा यह फिलीपींस, मलेशिया,

थाईलैंड, इण्डोनेशिया, कम्बोडिया, म्याममार तथा चीन जैसे देश में पायी जाती है। भारतीय जल भैंसे भारत, पाकिस्तान तथा अन्य देशों में पायी जाती है। ये भैंसे मुख्यत: दूध तथा मांस के लिए पाली जाती है। भैस का दूध गाय के दूध की तुलना में ज्यादा गाढ़ा तथा अधिक वसायुक्त होता है। नर भैसों का प्रयोग बोझा ढोने हेतु होता है। भैंसो का स्वभाव सीधा होता है अत: बोझा ढोने व कृषि कार्य में सभी गाँवों एवं कस्बों में इनका प्रयोग होता है। हमारे देश में भारतीय भैसों की निम्नलिखित नस्लें पायी जाती हैं–

(1) मुर्रा (2) भदावरी (3) नीली-रावी (4) सुरती (5) जाफराबादी (6) मेहसाना (7) नागपुरी (8) मराठवाड़ (9) तोड़ा

1. मुर्रा (Murrah)–

मूलस्थान– इस नस्ल का मूल जन्मस्थान मुख्यत: हरियाणा राज्य के रोहतक, हिसार, करनाल व गुड़गांव जिले है। परन्तु इस नस्ल के पशु पंजाब दिल्ली तथा उ०प्र० के पश्चिमी क्षेत्रों में भी पाये जाते हैं। देश के अन्य भागो में भी मुर्रा नस्ल के साड़ों को नस्ल सुधार के कार्यक्रम में प्रयोग किया जाता है।

लक्षण– शरीर का रंग स्याह काला, त्वचा चिकनी, मुलायम तथा उस पर बाल कम, सींग छोटे तथा बहुत घुमावदार अंदर की ओर, गर्दन व सिर हल्का, चेहरा पतला, कान छोटे, गर्दन पतली, पीठ चौड़ी टागे भारी, चोटी व मजबूत, पूंछ लम्बी व पतली, कूल्हे चौड़े, बड़ा विकसित अयन व दुग्ध शिरायें। मादा का दैनिक उत्पादन 6-7लीटर तक होता है। तथा 2000-2500 किग्रा प्रति ब्यात (300 दिन) दूध उत्पादन होता है। दूध में 7% तक वसा पायी जाती है। इस नस्ल के पशुओं का शारीरिक भार नर का 610 किग्रा तथा मादा का 510 किग्रा तक होता है। भैसें 36-40 माह की उम्र पर पहली बार बच्चा देती है।

2. भदावरी–

मूलस्थान– इस नस्ल का मूल जन्मस्थान उ०प्र० के इटावा तथा आगरा जिले माने जाते हैं।

लक्षण– इस नस्ल के पशुओं का तांबे जैसा रंग, मध्यम आकार, भैसों का पिछला हिस्सा भारी, सिर छोटा, सींग चपटे, गर्दन पतली, धड़ विकसित अयन छोटा परन्तु दुग्ध शिरायें विकसित, त्रिकोणाकार, सिर उभरा हुआ होता है, पैर छोटे व बलिष्ठ काले खुर, आखें बड़ी-बड़ी चमकदार, कान मध्यम व लटके हुए होते है। इनका प्रतिदिन औसतन दुग्ध उत्पादन लगभग 3.6 किग्रा होता है। अत: यह भैसे कम दूध देती है परन्तु दूध में 13% वसा तक पायी जाती है। अत: अधिक घी उत्पादन की दृष्टि से भदावरी भैंस दुनिया में सबसे अच्छी है। इस नस्ल के शुद्ध पशु मुख्यत: उत्तर प्रदेश के राजकीय पशुधन प्रक्षेत्र, इटावा, झांसी तथा मथुरा में पाये जाते है। भैस प्रति ब्यात 1100किग्रा दूध देती है। ये 50.3 माह में प्रथम बच्चा देती है। शारीरिक भार नर का 560 किग्रा जबकि मादा का 490किग्रा होता है।

3. जाफराबादी–

मूलस्थान– गुजरात के कच्छ, जूनागढ़ एवं जामनगर जिले इस नस्ल का मूल जन्म है। कठियावाड़ (सौराष्ट्र) के गिर वनों विशेषकर जाफराबाद में यह पशु पाये जाते है।

लक्षण– काला रंग, शरीर का आकार लम्बा, मस्तक भारी तथा सींग लम्बे गर्दन के दोनों ओर झुके हुए व ऊपर की ओर कुंडली बनाते है, विकसित अयन मादा का पिछला हिस्सा भारी होता है। दूध

उत्पादन भी अच्छा होता है। प्रति ब्यात 1400 किग्रा दूध उत्पादन होता है तथा दूध में 8% वसा पायी जाती है। नर पशु हल खीचने तथा भारवाहन जैसे कार्यो के लिए प्रयोग किया जाता है।

4. सूरती–

मूलस्थान– गुजरात में केला तथा बड़ौदा जिलों व आनंद जिला इस नस्ल का मूल जन्म स्थान माना जाता है।

लक्षण– काला रंग/बादामी, मध्यम आकार की शरीर सुवयवस्थित होता है। सींग मध्यम लम्बाई के, चपटे तथा हसिये के आकार के होते है। पूछ सफेद गुचछेयुक्त व लम्बी होती है। सिर चौड़ा, बड़ी-बड़ी आँखे होती है। ये पशु मुख्यत: दुग्ध उत्पादन के लिए पाले जाते है। इस नस्ल का दुग्ध उत्पादन 100-1300 किग्रा० प्रति ब्यात होता है। दूध में 8-12% वसा पायी जाती है। भैस 40-50 माह में प्रथम बच्चा देती है। बैल हल्के कृषि कार्यो के लिए अच्छे होते है।

5. मेहसाना–

मूलस्थान– इस नस्ल का मूल जन्मस्थान मेहसाना, सावरकान्ढा और बनासकान्ठा (गुजरात) जिलों को माना जाता है।

लक्षण– यह भैस मुर्रा तथा सुरती के संकरण से उत्पन्न हुई है। इस नस्ल के पशुओं का रंग स्याह काला से भूरा तथा चेहरे, पैर तथा पूंछ के सिरे पर सफेद चिन्ह पाये जाते है। आकार-प्रकार मुर्रा व सुरती से मिलता-जुलता है। मध्यम आकार, सिर भारी, माथा चौड़ा, चेहरा लम्बा, सींग लम्बे व मुड़े हुए, वक्ष चौड़ा, गर्दन लम्बी व पतली अयन विकसित व भलीभाति शरीर से लगा रहता है। थनों का आकार कुछ छोटा होता है। बैल यद्यपि चलने-फिरने में मंद होते है फिर भी भारी कार्य के लिए अच्छे होते है। दुग्ध उत्पादन क्षमता प्रति ब्यात 1200 से 1500 किग्रा तक होती है।

6. नागपुरी

मूलस्थान– इस नस्ल का मूलस्थान महाराष्ट्र के नागपुर, अमरावती और अकोला जिले माने जाते है।

लक्षण– इस नस्ल को इलिचपुरी या बेरारी (Elichpuri or Barrari) के नाम से भी जाना जाता है। शरीर का रंग काला, हल्का शरीर, टांगो पर सफेद धब्बे, सिर लम्बा, पतला, सींग लम्बे, चपटे व पीछे की ओर मुड़े हुए, गर्दन लम्बी, पूंछ छोटी, अयन छोटा होता है। दूध उत्पादन क्षमता 700 से 1200 किग्रा प्रतिब्यात होती है। दूध में 7% तक वसा पायी जाती है। मादा 45-50 माह में प्रथम बच्चा देती है। बैल चलने में मन्द होते है परन्तु भारी कार्य के लिए अच्छे होते है।

7. नीली-रावी–

मूलस्थान– इस नस्ल के पशु पंजाब के फिरोजपुर जिले में सतलज नदी के आस पास के क्षेत्रों में पाये जाते है।

लक्षण– शरीर का रंग काला या भूरा, माथे, चेहरे, थूथन, टांग व पूंछ का निचला भाग या अंतिम छोर सफेद रंग का होता है। गर्दन लम्बी, भारी व मोटी होती है। चेहरा लम्बा, थूथन चिकना, सींग छोटे मुड़े हुए, पूछ लम्बी व पतली, त्वचा चिकनी व बाल कम होते है, अयन विकसित व दुग्ध शिरायें भी विकसित होती है। दूध उत्पादन क्षमता 1500 से 1850 किग्रा० प्रति ब्यात होती है। मादा भैंस 45 से 50 माह में प्रथम बार बच्चा दे देती है। बैल भारी कार्यो के लिए अच्छे होते है।

1.3.2.5 बकरियों की भारतीय नस्लें

भारत में बकरियों की 23 नस्लें पायी जाती है। इनका उपयोग दूध, मांस, बाल एवं खाल प्राप्त करने के लिए किया जाता है। बकरी का बैज्ञानिक नाम कैप्रा हिरकस (Capra hircus) है। अन्य पशुओं की अपेक्षा बकरी की वृद्धि दर काफी अधिक (2.43% वार्षिक) है। विभिन्न जनवायु क्षेत्रों में पायीजाने वाली भारतीय नस्लें शरीर के आकार-प्रकार गठन में काफी भिन्न होती है। इनमें बहुप्रसवता (Polyoestrus) गुण होने से प्रति बकरी एक से अधिक बच्चा देती है। इनके द्वारा पर्याप्त मात्रा में मांस का उत्पादन होता है। भारत की विभिन्न जलवायु क्षेत्रों में पायी जाने वाली बकरियों का वर्गीकरण निम्नलिखित है–

(अ) उत्तरी ठंडे क्षेत्र (Northern temperate region)– गद्दी, पश्मीना, चांगथांगी, चींगू

(ब) उत्तर-पश्चिमी, मध्य शुष्क एवं अर्द्ध शुष्क क्षेत्र (North-western central arid and semi-arid region)– जमुनापारी, बरबरी, बीटल, मेहसाना, मारवाड़ी, जखराना, सिरोही, सूरती, कच्छी, जालाबादी।

(स) दक्षिणी क्षेत्र (Southern region)– संगमनेरी, उस्मानाबादी, मालाबारी।

(द) पूर्वोत्तर क्षेत्र (North-Estern region)– गंजम, काली बंगाल। भारत की बकरियों की जो नस्ले उत्पादन में अच्छी मानी जाती है उनका वर्णन निम्नलिखित है–

1. बरबरी–

मूलस्थान– यह नस्ल उ०प्र० के एटा, आगरा, अलीगढ़ व मथुरा जिलो में पायी जाती है।

लक्षण– ये आकार में मध्यम व भूरे छोट, पैर छोटे, छोटे सीधे कान बीदर्स की ऊंचाई 60-70 सेमी० शरीर छोटा, कोणाकार, सीर्धा नाक, शरीर की लम्बाई, ऊँचाई और छाती का घेरा क्रमश: 70, 71 और 76 सेमी० तक होता है। अयन व थन पूर्व विकसित नियमित प्रजनन, प्रति व्यात औसत 2 बच्चे, प्रथम बार बच्चा देने की उम्र 14 माह, 5 होता है। शारीरिक भार नर का 32 किग्रा तथा मादा का 23 किग्रा तथा जन्म समय औसत भार 1 किग्रा होता है। शरीर का रंग विभिन्न प्रकार के लेकिन मुख्यत: सफेद व इसके ऊपर लाल धब्बे पाये जाते है। लाभकारी नस्ल है तथा प्रतिदिन 1-2.5 किग्रा दूध देती है। घर में रखकर पालने के लिए उपयुक्त होती है। प्रति ब्यात (152 दिन) में 325 किग्रा दूध देती है।

2. जमुनापारी–

मूलस्थान– इस नस्ल की बकरियाँ उ०प्र० के इटावा जिले (सहसों व चकनगर क्षेत्र में) आगरा तथा मथुरा में और म०प्र० में चम्बल व यमुना नदियों के बीच के क्षेत्र में पायी जाती है।

लक्षण– इनका आकार बड़ा, कद ऊँचा, टांगे लम्बी, माथा उठा हुआ चौड़ा, कान बड़े लटके हुए (26-28 से०मी०), सींग 24-30 सेमी लम्बी, उठी हुई रोमन नाक तथा जांघो पर पीछे की ओर घने बाल होते है। शरीर का रंग सफेद, कत्थई या आमतौर पर काले धब्बे जो गर्दन और कान पर पाये जाते है। औसत शरीर की लम्बाई ऊँचाई और छाती का घेरा क्रमश: नर में 87, 96 तथा 80 सेमी० तथा 75 किग्रा० तथा मादा में 55 किग्रा होता है। जन्म के समय औसत वजन 4 किग्रा होता है। यह दुकाजी नस्ल

है। इससे अच्छा मांस व अधिक दूध प्राप्त होता है। प्रतिदिन 2 से 3 किग्रा दूध देती है जबकि औसतन 575 किग्रा प्रति ब्यात दूध उत्पादन होता है। दूध में 5.2% वसा की मात्रा होती है। जमुनापारी बकरियां जुलाई से अक्टूबर तक गाभिन होकर फरवरी से मार्च तक वर्ष में केवल एक बार एक या दो बच्चा देती है। इनका गर्भकाल 5 माह का होता है। जमुनापारी बकरियां स्वभावत: झाड़ियां तथा पौधों की पत्तियों को उचककर खाना अधिक पसंद करती है। ये अपने चंचल स्वभाव के कारण इधर-उधर घूमकर चरने की आदी होती है।

3. बीटल–

मूलस्थान– यह नस्ल पंजाब के णृतसर, गुरुदासपुर तथा फिरोजपुर जिलों में पायी जाती है।

लक्षण– इस नस्ल का विकास जमुनापारी नस्ल से किया गया है इसका कद जमुनापारी से छोटा, सींग चपटे, नाक उठी हुई व कान लम्बे होते है। बकरों की दाड़ी (Beard) पायी जाती है। इनका रंग चितकबरा (लाल+सफेद) होता है। इनके कान लम्बे तथा नीचे की ओर लटके हुए होते है। इनके वयस्क नर व मादा का शरीर भार क्रमश: 70 किग्रा तथा 46 किग्रा होता है। इनके शरीर की लम्बाई ऊँचाई और छाती का घेरा नर में क्रमश: 86, 92 व 86 सेमी० होता है। वैसे इसका दूध उत्पादन 2 से 2.5 किग्रा प्रतिदिन तक है। दूध में 4.5% तक वसा पायी जाती है। बकरियां वर्ष में एक बार में 1 या 2 बच्चा देती है। यह नस्ल दुकाजी है तथा दूध व मांस के लिए अच्छी होती है।

4. सूरती–

मूलस्थान– इस नस्ल की बकरियां गुजरात के सूरत, भड़ौच तथा महाराष्ट्र के पूना, मुम्बई तथा नासिक जिलों में पायी जाती है।

लक्षण– शरीर मध्यम आकार का, औसत लम्बाई वाला होता है। छोटी टांगे, शरीर रंग सफेद या भूरा, छोटा कद होता है। शरीर की लम्बाई ऊँचाई तथा छाती का घेरा क्रमश: नर में 65, 74 व 71 सेमी तथा मादा में 66, 70 व 72 सेमी० होता है। पूंछ छोटी होती है। शारीरिक भार नर का 25 किग्रा तथा मादा का 32 किग्रा होता है। जन्म से समय औसत भार 2.1 किग्रा होता है। बकरियां वर्ष में एक या दो बार बच्चा देती है तथा प्रति ब्यात 1 या 2 बच्चा देती है। प्रतिदिन औसतन 1-1.2 किग्रा दूध देती है तथा 150 किग्रा प्रति ब्यात दूध का उत्पादन होता है। ये बकरियां घर में रखकर पाली जाती है। यह एक दुधारु नस्ल है।

5. सिरोही– यह नस्ल राजस्थान के सिरोही जिले में प्रमुखता से पायी जाती है।

यह गठीले शरीर वाली, मध्यम आकार की बकरी है। इसका रंग सफेद व कत्थई तथा मिश्रण होता है। सिर छोटा, कान लम्बे लटके हुए, पूंछ घने बालों से ढकी, पूरा शरीर बालों से ढका, ऊँचाई 55 से 65 सेमी होता है। शरीर की औसत लम्बाई, ऊँचाई तथा छाती का घेरा क्रमश: नर में 80, 86 व 80 सेमी० तथा मादा में 61, 68 व 62 सेमी० तक होता है। औसत शारीरिक भार नर का 50 किग्रा तथा मादा का 23 किग्रा होता है। जन्म के समय औसत वजन 2.0 किग्रा होता है। वर्ष में एक बार में 2 बच्चा देती है तथा प्रथम बार बच्चा 19 माह में दे देती है। घर में रखकर पाली जाने वाली है। इस नस्ल में गले के नीचे कंगली (माँसल भाग) होती है जिससे इसकी पहचान की जाती है। शुष्क जलवायु में भी ये अच्छा उत्पादन करती है। प्रतिदिन 0.5-1.0 किग्रा दूध देती है। यह दुकाजी नस्ल है तथा दूध और मांस के लिए पाली जाती है।

6. मारवाड़ी– इस नस्ल की बकरियाँ मारवार व जोधपुर जिलों (राजस्थान) में पायी जाती है।

शरीर का रंग पूर्णत: काला, पूरा शरीर 10-12 सेमी० लम्बे बालो से ढका, नर में मोटी दाड़ी, कान छोटे, छोटा सिर, सींग छोटे घुमावदार पीछे की ओर मुड़े हुए, अयन विकसित, छोटा कद, गर्दन भारी होता है। शरीर की लम्बाई, ऊँचाई और छाती का घेरा क्रमश: नर में 71, 75 व 72 सेमी० तथा मादा में 64, 69 व 69 सेमी होता है। शारीरिक भार नर का 33 किग्रा तथा मादा का 26 किग्रा होता है। जन्म के समय औसत भार 2.3 किग्रा होता है। वर्ष में एक बार बच्चा देती है। प्रति ब्यात एक ही तथा जैसे-जैसे उम्र बढ़ती है दो बच्चे पैदा करती है। प्रथम बच्चा 20 माह के उम्र पर देती है। ये बीमारियों के प्रतिरोधी होती है। इसका मांस अच्छा होता है। यह दुकाजी नस्ल है जो कि मांस व दूध के लिए पाली जाती है। इनका दूध उत्पादन प्रतिदिन 0.8-1.0 किग्रा होता है तथा औसतन 92 किग्रा प्रति दुग्धकाल में दूध देती है।

7. मेहसाना– इस नस्ल बकरियां गुजरात राज्य के मेहसाना जिले में और आस-पास के क्षेत्रों में पायी जाती है।

शरीर का रंग पूर्णत: काला, परन्तु कान के जड़ के पास सफेद होता है। छोटी दाड़ी (Beard) होती है। बाल कड़े, भरे व सफेद रंग के मिश्रण पाये जाते है। मध्यम आकार की शरीर, रोमन नाक, सफेद कान, पत्ती जैसे लटके रहते है। शरीर की लम्बाई, ऊँचाई तथा वक्ष का घेरा क्रमश: नर में 71, 80 तथा 77 cm तथा मादा में 68, 74 व 73 सेमी होता है। नर के शरीर का वजन 37 किग्रा जबकि मादा का 32 किग्रा होता है जन्म के समय औसत भार 2.2 किग्रा होता है। वर्ष में एक बार बच्चा देती है और प्रतिब्यात एक बच्चा देती है। दुकाजी नस्ल है।

8. जखराना– इस नस्ल की बकरियां राजस्थान के अलवर जिले की बहरोर तहसील तक ही सीमित है जो अरावली पर्वत श्रृंखला में स्थित है इनकी संख्या काफी कम पायी जाती है।

ये आकार में बड़ी तथा काले रंग की होती है। साथ ही कान तथा थूथने पर सफेद धब्बे पाये जाते है। कान बीटल जैसे लेकिन उससे थोड़ा छोटे होते है। इनका सिर संकरा व उठा हुआ होता है। औसत शारीरिक भार नर का 58 किग्रा तथा मादा का 45 किग्रा होता है। बकरियां प्रतिवर्ष एक ही बार ब्याती है तथा एक या दो अथवा कभी-कभी तीन बच्चा देती है। इसका मांस भी अच्छा होता है। यह दुकाजी नस्ल है। ये प्रति ब्यात (115 दिन में) 122 किग्रा० दूध देती है।

9. ओस्मानाबादी– यह नस्ल महाराष्ट्र के ओस्मानाबाद के आस-पास के क्षेत्रों में पायी जाती है।

शरीर का रंग मुख्यत: काला, सफेद या कत्थई अथवा चित्तीदार होता है। लम्बा शरीर व बड़ा आकार, लम्बे कान, लटकते हुए लगभग 20 सेमी लम्बे होते है। सींग 12-15 सेमी लम्बे होते हैं। नर का शरीर भार 40-50 किग्रा होता है और जन्म के समय शरीर का भार 2.4 किग्रा होता है। बकरियां प्रतिवर्ष दो ही बार बच्चा देती है। माँस अच्छा होता है। यह दुकाजी नस्ल है। यह प्रतिदिन 3.5 किग्रा दूध देती है और प्रतिब्यात 170-180 किग्रा दूध देतीहै।

विदेशी बकरियों की नस्लें– विदेशी नस्ल की बकरियां दूध अधिक देती है। इनमें उत्तम गुणवत्ता का बाल प्राप्त होता है (अंगोरा)/प्रमुख नस्ले निम्नलिखित है–

(1) अंगोरा (2) ऐंग्लोन्यूबियन, (3) अल्पाइन, (4) टोगनबर्ग (5) सानन

10. अंगोरा– यह नस्ल तुर्की या एशिया माइनर में मूल रूप से विकसित हुई है और यह हमारे देश में कश्मीर, हिमाचल प्रदेश में पायी जाती है।

छोटा शरीर का आकार, सिर छोटा, सफेद रंग, कान लम्बे व लटके हुए, सींग नुकीले व चपटे, पूंछ छोटी, सुडौल बदन, छोटा अयन, पूरा शरीर गुच्छेदार बाल (मोहेर) से ढका हुआ (13-15 सेमी)। यह नस्ल मोहेर के लिए उपयोगी है। उत्पादन प्रति वर्ष 1.5 किग्रा प्रति बकरी होता है। एक बार में एक बच्चे का जन्म देती है।

11. एग्लोन्यूबियन– यह नस्ल सूडान एवं अफ्रीका के अन्य क्षेत्रों में पायी जाती है।

शरीर का रंग लाल/काला/कत्थई हो सकता है। छोटे-छोटे रेशमी वालो से ढका शरीर, अयन बड़ा व विकसित होता है। दुधारु बकरी 1.2 किग्रा दूध प्रतिदिन देती है। इसे जर्सी भी कहा जाता है।

12. अल्पाइन– इस नस्ल की बकरियां फ्रांस में पायी जाती है। इस नस्ल के बकरियों के शरीर काला एवं सफेद होता है। बिना सींग वाली या सींगयुक्त होती है, लम्बे बाल, छोटे नुकीले कान होते है। शरीर का भार वयस्क का 60-65 किग्रा तक होता है। प्रतिदिन 1.0-1.3 किग्रा दूध का उत्पादन होता है। वैसे 3 से 4 किग्रा० दूध देने वाले पशु भी इस नस्ल में पाये जाते हैं।

13. टोगनबर्ग– इस नस्ल का मूल जन्म स्थान स्विटजरलैंड माना जाता है।

शरीर का रंग कत्थई, चाकलेटी, सफेद धब्बे, चेहरे, कानों व पुट्ठों पर, पैर घुटनों से नीचे सफेद होता है।सामान्यतया सींग रहित, नर में मादा से ज्यादा बाल, त्वचा चिकनी, मुलायम, विभिन्न जलवायु में रहने की क्षमता होती है। शरीर की ऊचाई 65-75 सेमी० होती है। पूर्ण वयस्क मादा व नर का वजन 50 व 65 किग्रा० होता है। यह दुधारु नस्ल है तथा प्रतिदिन 2 किग्रा दूध देती है।

14. सानन (Saanen)– इस नस्ल का मूल जन्मस्थान स्विटजरलैंड माना जाता है।

इन बकरियों के शरीर का रंग सफेद या बिस्कुटी होता है लेकिन कान, नाक व अयन पर काले धब्बे, ऊपर को उठे हुए छोटे सीधे कान सींग रहित, इनमें हरनोफरोडीटिज्म काफी पायाजाता है जो सींग रहित लक्षण से जुड़ा है। अत: सींग वाला नर ही प्रजनन के लिए उपयुक्त होता है। सीधी नाक, कान आगे की ओर खुलने वाले, कोणाकार शरीर, अयन पूर्ण विकसित, पूर्ण वयस्क का वजन 65 किग्रा तथा 75 किग्रा नर का होता है। इसके नर व मादा दोनों के दाढ़ी (Beard) पायी जाती है। ये धूप सहन नहीं कर पाती है। औसत दूध उत्पादन 3.1 किग्रा प्रतिदिन होता है तथा प्रति ब्यात (250 दिन में) 800 ली० दूध देती है। यह दुकाजी नस्ल है तथा इसे मांस व दूध के लिए पाला जाता है।

सानेन नस्ल की बकरियों को विश्व की दूध की रानी (Milk queen of the world) कहा जाता है।

1.3.2.6 अन्य दुग्ध उत्पादक प्रजातियाँ

भारत में कुछ ऐसे दुर्गम व पहाड़ी क्षेत्र है जहाँ पर दुग्ध उत्पादन कुछ विशेष प्रकार के पशुओं जैसे याक व मिथुन से भी किया जा रहा है। संक्षेप में इनका वर्णन आगे किया जा रहा है–

1. याक– भारत में याक मुख्य रुप से चार पहाड़ी राज्यों जैसे जम्मू-कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, सिक्किम तथा अरुणाचल प्रदेश में पाये जाते है। देश में इनकी कुल संख्या लगभग 40,000 है। जम्मू-कश्मीर में यह लगभग 4000-6000 मी० ऊँचाई पर कारगिल व लेह क्षेत्रों में पाये जाते है। हिमांचल

प्रदेश में सांगला, पंगी व स्थिति घाटियों में पाये जाते हैं। याक बर्फ व ठंडे स्थानों पर रहने वाली गाय के आकार-प्रकार का पशु है। याक मुख्यत: दूध, मांस व कृषि कार्यों के लिए पाले जाते है। यह पहाड़ों पर बोझा ढोने के भी काम आते है। एक मादा याक 180-270 दिन के ब्यात में 300-700 किग्रा दूध देती है। इनके दूध में वसा 6-8% तक पाया जाता है। नर याक खेतों में हल चलाने के लिए काफी अच्छे होते है।

2. मिथुन (Mithun)– भारत में मिथुन पूर्वोत्तर भारत के राज्यों जैसे अरुणाचल प्रदेश, नागालैण्ड व मणिपुर में दुर्गम क्षेत्रों में पाये जाते है। इसे पहाड़ी गाय कहा जाता है। ये समुद्रतल से 1000–3000 मी० ऊँचाई तक पाले जाते है। ये बहुत कुछ गायो से शारीरिक संरचना में मिलते जुलते है। लेकिन इनमें कुकुद नहीं होता है। पूँछ काफी छोटी होती है। ये मुख्य रुप से मांस के लिए पाले जाते है। लेकिन इनमें थोड़ी मात्रा में 1.0-2.5 किग्रा दूध प्रतिदिन प्राप्त होता है। जिसमें 4-5% वसा होती है। वयस्क मिथुन का शारीरिक भार 400-500 किग्रा तथा जन्म के समय 20-25 किग्रा होता है।

1.4 सारांश (Summary)

भारत में गायों की 28, भैसों की 7 व बकरियों की 23 नस्लें है। इनमें से प्रत्येक की 4-5 नस्ले अच्छी दुग्ध उत्पादक होती है। ये नस्लें लम्बे समय तक चयन और प्रजनन द्वारा स्थानीय स्तर पर विकसित हुई है। भारत में मुख्यत: भैसों, गायो तथा बकरियों को दूध उत्पादन के लिए पाला जाता है। भारत में विश्व की कुल गौवंश का 16%, गाय 56% भैसें तथा 20% बकरियां पायी जाती है। भारतीय गौवंश का 18% (28 नस्ले), 50% भैंसे शुद्ध नस्ल की है शेष 82% गाये का 50% भैसे देशी, मिश्रित तथा छोटे आकार की है। इनका चयनित प्रजनन (Selective breeding) तथा विदेशी नस्लों के सांड़ के साथ संकर प्रजनन (Cross breeding) के द्वारा सुधार किया जा रहा है। इसके फलस्वरुप कई संकर नस्ल विकसित हुई है। उदाहरण के लिए करनस्विस, करनफ्रिज, जरसिंध सुनन्दिनी, तथा फ्रिजवाल प्रमुख है। संकर नस्ल के पशुओं की संख्या कुल गौवंशीय पशुओं की संख्या का 10% है। जबकि दुग्ध उत्पादन में इनका योगदान 22% है। इस प्रकार संकर नस्ल की पशुओं का देश को विश्व में दूध उत्पादन में प्रथम स्थान पर लाने में महत्वपूर्ण योगदान है।

1.5 उपयोगी पुस्तकें

(1) टेक्सट बुक आफ एनिमल हस्बैन्ड्री– डा० जी० सी० बनर्जी

(2) हैण्ड बुक आफ एनिमल हस्बैन्ड्री – आई० सी० ए० आर० प्रकाशन

(3) पशुपालन एवं दुग्ध विज्ञान – डा० जगदीश प्रसाद

1.6 संबंधित प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

(1) गाय के प्रमुख नस्लों के नाम लिखिये तथा दुधारू नस्लों की पहचान लिखिए।

(2) विदेशी गायों की प्रमुख नस्लों का वर्णन करें।

(3) संकर गायों की प्रमुख नस्लों का वर्णन करें।

(4) भैंस की प्रमुख नस्लों का नाम लिखिए तथा मुर्रा व जाफराबादी का वर्णन करें।

(5) बकरियों की विदेशी नस्लों का वर्णन करें।

लघु उत्तरीय प्रश्न

टिप्पणी लिखें -

(1) गाय की द्विकाजी नस्ले

(2) भारवाही नस्ले

(3) संकर गायों की नस्लें

(4) सुरती

(5) मेहसाना

(6) भदावरी

(7) याक

(8) मिथुन

(9) बरबरी

(10) जमुनापारी

इकाई 2 : दुग्ध उत्पादन के लिए डेयरी पशुओं का चयन

इकाई की रूपरेखा

2.1. प्रस्तावना (Introduction)

2.2. उद्देश्य (Objectives)

2.3. चयन (Selection)

- 2.3.1 चयन का महत्व (Importance of Selection)
- 2.3.2 चयन का क्षेत्र (Scope of Selection)
- 2.3.3 चयन का उद्देश्य (Objective of Selection)
- 2.3.4 डेयरी पशुओं के आर्थिक गुण (Economic characteristics of Dairy Animals)
  - 2.3.4.1 शरीर की बाहरी संरचना और शारीरिक क्रियायों से सम्बन्ध
  - 2.3.4.2 दुधारु पशु के लक्षण
  - 2.3.4.3 शारीरिक वृद्धि
  - 2.3.4.4 प्रजनन गुण
  - 2.3.4.5 उत्पादन गुण
- 2.3.5 चयन का आधार (Basis of Selection)
- 2.3.6 चयन की विधियां (Methods of Selection)
  - 2.3.6.1 व्यक्तिगत चयन (Individual Selection)
  - 2.3.6.2 वंशावली वरण (Pedigree selection)
  - 2.3.6.3 संतति परीक्षण (Progency test)
  - 2.3.6.4 चयन सूचक या कुल स्कोर विधि (Selection Index or Total Score Method)
  - 2.3.6.5 प्रजनक साँड सूचक (Sire Index)

2.4 प्रदर्शन वृत्त वरण (Show Ring Selection)

2.5 सारांश

2.6 उपयोगी पुस्तकें

2.7 संबंधित प्रश्न

2.1. प्रस्तावना (Introduction)

पशु के आर्थिक रुप से लाभ की स्थिति में बनाये रखने तथा उनमें निरंतर सुधार के लिए अच्छा पोषण, चयन एवं प्रजनन (आनुवंशिकी सुधार) तथा अच्छे प्रबंध की अति आवश्यकता होती है। पशुओं को आर्थिक रुप से उत्पादक बनाने के लिए उनमें आनुवंशिक सुधार अति आवश्यक है। क्योंकि पशु के अंदर जब उत्पादक गुण ही नहीं रहेगे तो उनके लिए अच्छे पोषण व प्रबंध का कोई अर्थ नहीं रह जाता है।

भारत में 18% गाय ही विशुद्ध नस्ल की है जो लम्बे समय तक चयन और प्रजनन कर विभिन्न क्षेत्रों में विकसित हुई है। शेष 82% भारत में विशुद्ध नस्ल की गायें छोटे कद, कम भार वाले तथा देशी श्रेणी में आते है जिनका दूध उत्पादन बहुत ही कम होता है तथा ये अनार्थिक होती है। इन पशुओं में रोग प्रतिरोधिता काफी होती है। उत्तम आनुवांशिकता वाले पशुओं का उपयोग ही आगे की संतति उत्पादन करने के लिए की जाने वाली प्रक्रिया चयन कहलाती है। पशुओं में सुधार मुख्य रुप से चयन एवं प्रजनन द्वारा ही संभव है। पिछले कुछ वर्षो से बड़ी संख्या में अधिक दूध उत्पादन करने के लिए विदेशी दुधारु पशु एवं उनके वीर्य का आयात कर वर्णसंकर पशुओं को तैयार किया जा रहा है जिससे पशु प्रजनन का महत्व और अधिक बढ़ गया है।

2.2. उद्देश्य (Objectives)

(i) डेयरी पशुओं जैसे गाय, भैंस बकरी आदि की जानकारी एवं उनके चयन का आधार।

(ii) संतति परीक्षण जिसके द्वारा संतान की उत्पादन क्षमता के आधार पर का प्रजनन के लिए चयन करना।

(iii) प्रजनक सांड़ सूचक द्वारा उत्तम क्वालिटी के साड़ का चयन

(iv) दुधारु पशुओं के आर्थिक गुणो का मूल्यांकन।

2.3. डेयरी पशुओं का चयन (Selection of Dairy Animals)

पशुओं का चयन उनमें आनुवंशिक क्षमता में सुधार और पशुपालक के लिए उन्नति सर्वश्रेष्ठ माध्यम है। वरण या चयन शब्द का अर्थ यहाँ ऐच्छिक गुणो वाले पशुओं को छांटकर उन्हें संतान उत्पन्न करने का अवसर प्रदान करना तथा अनैच्छिक गुणों वाले पशुओं को प्रजनन से वंचित करना है। अत: उत्तम श्रेणी की संतति या संतति उत्पन न करने के लिए उत्कृष्ट या अच्छे पशुओ को छाटना चयन कहलाता है। इसके विपरीत निष्कृष्ट पशुओं को निकालना निष्कासन कहलाता है।

पशुओं का चयन दो प्रकार से होता है–

(1) प्राकृतिक चयन (Natural Selection)– प्रकृति स्वयं अच्छे एवं योग्य जीवों का चयन करती रहती है तथा कमजोर एवं अयोग्य प्राणी समाप्त हो जाते है, इसे प्राकृतिक चयन कहते है। यह बहुत कुछ डार्विनवाद के 'योग्यतम की उत्तरजीविता' के आधार पर आधारित है।

(2) कृत्रिम चयन– (Artificial Selection)– जब मनुष्य अपने लिए ऐच्छिक गुणो वाले पशुओं का चयन करता है तो इसे कृत्रिम चयन कहते है। इसमें प्रकृति का योगदान नहीं होता है।

कृत्रिम चयन निम्न विधियों द्वारा किया जाता है जैसे

(1) व्यक्तिगत चयन (Individual Selection)

(2) वंशावली चयन (Pedigree selection)

(3) संतति चयन (Progeny test)

2.3.1 चयन का महत्व

पशुधन के सुधार के लिए उनमें वरण होना अति आवश्यक है यह पशु प्रजनन के उन्नति के लिए यह एक सर्वश्रेष्ठ युक्ति है। प्रजनन के दृष्टिकोण से वरण का अर्थ दूसरी पीढ़ी के लिए अच्छे माता-पिता का चयन है। प्राचीनकाल में विज्ञान का इतना विकास नहीं था तो केवल चयन ही पशु की आनुवंशिक सुधार का हथियार रहा है। परन्तु अब विज्ञान की नयी-नयी शाखाओं व आनुवंशिकी विज्ञान में काफी प्रगति के बाद चयन इसका एक आवश्यक अंग बन गया जिससे वंशागति नियमों (Laws of inheritance) के अनुसार प्रजनन में इसके उपयोग से और भी तीव्र गति से पशुधन की उन्नति संभव हो सकी है। केवल चयन अथवा प्रजनन विधियों से ही पशुओं का सुधार संभव नहीं है बल्कि इन दोनो की सामूहिक उपयोगिता ही पशुओ के शीघ्र उन्नति की सर्वोत्तम विधि है। अत: चयन एवं प्रजनन की विधियां एक दूसरे का पूरक है और कभी-भी एक दूसरे से पृथक नहीं की जा सकती है।

2.3.2 चयन का क्षेत्र (Scope of selection)

ऐच्छिक गुणो के पशु पैदा करने के लिए वरण आवश्यक है। पशुओं की उन्नति का 35 से 50% उत्तरदायित्व वरण पर ही है। वर्तमान पशुधन सुधार के लिए पशुओं को चुनने तथा अनैच्छिक पशुओं की छटनी करके अलग करने का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए। पशु-प्रजनन में जो पशु अधिक से अधिक बच्चे पैदा करते है उन्हीं का चयन संभव है। वरण का क्षेत्र पशुओं में उपस्थित विभिन्नता पर निर्भर करता है। पशु जितने ही अधिक एक दूसरे से भिन्न होगे, उतना ही अधिक वरण का क्षेत्र विस्तृत होगा।

2.3.3 चयन का उद्देश्य (Objectives of Selection)

चयन का उद्देश्य पशुधन का शीघ्र से शीघ्र सुधार करना है जिससे वे अधिक उत्पादक हो।

वरण या प्रजनन के ढंग नये जीन पैदा करते है वरन् पुराने जीन जो पशु के शरीर में पहले से मौजूद थे उनको ऐसे उचित क्रम में व्यवस्थित करने का प्रयास है जिनसे वे अधिक से अधिक लाभकारी गुण पशुओं में पैदा कर देते है। इस प्रकार चयन से पशुओं के आनुवंशिक क्षमता में परिवर्तन की दर निम्न तीन कारको द्वारा इस प्रकार निर्धारित होती है–

आनुवंशिक क्षमता में परिवर्तन की दर=हेरिटबिलिटी*चयन अंतर/पीढ़ी अन्तर

अत: चयन पशुपालक का अति आवश्यक यंत्र है और इसके बिना पशुओं का उत्थान नहीं हो सकता है।

2.3.4 डेयरी पशुओं के आर्थिक गुण (Economic characteristics of Dairy Animal)

विभिन्न प्रकार के पशुओं में चयन का मुख्य उद्देश्य उनके आर्थिक गुणो में उन्नति करना है। डेयरी पशुओं में जिन बातो का चयन के समय महत्व दिया जाता है, वे इस प्रकार है–

2.3.4.1 शरीर की बाहरी संरचना और शारीरिक क्रियाओं से संबंध

पशु के शरीर की बाहरी संरचना का शारीरिक क्रियाओं से घनिष्ठ संबंध है इसको अवश्य ध्यान में रखना चाहिए। ये सम्बंध निम्नलिखित है :

1. पशु के शरीर की सामान्य वनावट औसत कद, मुलायम त्वचा, सुविकसित अंग तथा अच्छा स्वास्थ्य पशु को अच्छा उत्पादक तथा अधिक कार्य करने वाला प्रदर्शित करते है।

2. चुस्त शरीर, बड़ी-बड़ी चमकीली आँखें और चौकन्ने कान पशु का स्वस्थ होना प्रदर्शित करते है।

3. बड़े-बड़े खुले नथुने पशु के श्वसन अंगों का सुविकसित होना प्रगट करते है।

4. चौड़ा मुँह, सुदृढ़ जबड़े तथा मजबूत दाँत इस बात के द्योतक है कि पशु भली-भाँति चबा-चबाकर खाने वाला है। ऐसा पशु अधिक उत्पादक होगा।

5. ढले हुए जोड़ अच्छी सुविकसित हड्डियां दुधारु तथा अधिक कार्य करने वाले पशुओं की निशानी है।

6. हल्के, छोटे और गुट्ठल सींग तथा लम्बे, पतले व नुकीले सींग क्रमश: शांत एवं खुँखार होना प्रकट करते है।

7. बैलो तथा सांड़ों का कुकुद (hump) उठा हुआ अच्छा माना जाता है जबकि गायों में पतली गर्दन, छोटा कुकुद तथा मध्यम मलकम्बल दुधारु होने की निशानी है।

8. सुदृढ़ तथा औसत लम्बाई के ऊपर से नीचे की ओर ढलवा पैर अच्छे कार्य करने वाले पशुओं में वांछनीय है। खुर एक समान काले रंग के तथा उनके बीच में विदर (Cleft) का फासला कम होना अधिक अच्छा है।

9. लम्बी, चपटी, उभरी हुई तथा बड़ी-बड़ी फासले पर पसलियों का होना एवं उभरा हुआ तलपेट पशु के भीतरी अंगों का सुविकसित होना प्रकट करता है।

10. अपलास्थि (Pin Bones) जितनी ही एक-दूसरे से दूर-दूर होगी उतना ही गाभिन के सम व बच्चा देते समय कष्ट कम होगा।

11. हुक अस्थियां (Cip Bones) के मध्य जितना अधिक फासला होगा उतना ही गाय को बच्चा देते समय कष्ट कम होता है, गाय के गर्भाशय का विकास हो सकेगा और साथ ही बच्चे के उलझने की सम्भावना कम होगी।

12. वक्ष एवं हत घेरा (Hearth girth) का बड़ा होना फेफड़ों एवं दिल का सुविकसित होना प्रकट करता है।

13. चिकना, लचीला, सुविकसित, बड़ा, थन बड़े व बराबर तथा उभरी हुई दुग्धशिराओं युक्त अयन गाय के अच्छे दुग्धोत्पादक होने का द्योतक है।

14. गाँठो रहित मुलायम अयन यह प्रकट करता है कि अपने रोगाणुओं से रहित है अत: दुग्ध उत्पादक अधिक व स्वच्छ होगा।

15. नर पशुओं में चुस्त मुतान बड़े-बड़े तथा समान अण्डकोष (Testicles) एवं मुलायम वृषणकोष (Serotum) इस बात को प्रतिदिन करते है कि वह अच्छा तथा उत्तम प्रजनन करने वाला है।

2.3.4.2 दुधारु गाय के लक्षण (Characteristics of Dairy cow)

1. शरीर आगे से पतला और पीछे से भारी होना चाहिए।

2. अयन (Udder) अच्छा और बड़ा होना चाहिए।

3. उसका स्वभाव सरल और सीधा होना चाहिए।

4. मुह सुंदर एवं पतला होना चाहिए।

5. थन अच्छे और बराबर तथा दुग्धशिरायें (Milk veins) उभरी हुई होनी चाहिए।

6. शरीर लम्बा तथा सुगठित होना चाहिए।

7. शरीर की चमड़ी चमकीली तथा मुलायम होनी चाहिए।

8. एक ब्यात में उसे 9 माह दूध देना चाहिए।

9. ब्याने का अन्तराल नियमित होना चाहिए।

10. गाय का अयन दोनों जांघो के मध्य ऊपर और पीछे तक फैला हुआ सुविकसित होना चाहिए।

11. वह अधिक मात्रा में दूध देती है और उसमें वसा की मात्रा भी अधिक हो।

12. गाय शीघ्र दूध देने वाली व रोग रहित हो।

13. गाय अपने नस्ल के अनुरुप हो।

14. शरीर सुगठित, आगे पतला तथा पीछे भारी हो।

15. गाय का गलकम्बल पतला, त्वचा लचकीली, आँखे बड़ी-बड़ी तथा स्वभाव सरल हो।

16. गर्दन पतली, रुप आकर्षक तथा देखने में स्त्रीत्व और ओजस्विता का समन्वय होना चाहिए।

17. जहाँ तक सम्भव हो गाय को पहले या दूसरे ब्यात की अवधि में ही चुनना चाहिए। क्योंकि इसमें दुग्धोत्पादन की क्षमता अधिक होती है।

डेयरी पशुओं के आर्थिक गुणो को निम्नलिखित रुप से वर्गीकृत किया जा सकता है–

1. शारीरिक वृद्धि : (i) जन्म के समय भार (ii) विभिन्न आयु पर भार

2. प्रजनन गुण : (i) यौवनारम्भ पर आयु (ii) प्रथम ब्यात पर आयु (iii) गर्भधारण दर (iv) मद चक्र (Eastrus cycle) (v) गर्भाविधि (Pregencecy) (vi) प्रसव एवं अगले मदचक्र के बीच की अवधि (vii) ब्याने से कर्भधारण के बीच का समय (viii) ब्यांत अंतर

3. उत्पादन गुण : (i) दूध का उत्पादन (Milk yield) (ii) दुग्ध काल (Lactation Period) (iii) अधिकतम दुग्ध उत्पादन (Peak milk yield) (iv) शुष्ककाल (Dry Period) (v) जीवनभर की उत्पादकता (Herd life yield)

2.3.4.3 शारीरिक वृद्धि (Physical growth)

शरीर का भार तथा वृद्धि पशुओ की शारीरिक क्षमता व विकास दर को दर्शाते है। पशु का सुडौल व पुष्ट शरीर पशु की अच्छी उत्पादन क्षमता का प्रतीक माना जाता है। इसके अन्तर्गत पशु की शारीरिक वृद्धि की निम्नलिखित अवस्थायें होती है।

जन्म के समय भार (Birth weight)

जन्म के समय बच्चे का शारीरिक भार सामान्य होने पर ही आगे उसका विकास अच्छा होता है। कम भार होने पर बच्चा कुपोषित व अन्य असामान्यताओं का शिकार होता है जो जन्म के कुछ समय के बाद मर भी सकता है।

गाय के बच्चे का शारीरिक भार (जन्म के समय)–20 से 22 किग्रा

भैस के बच्चे का शारीरिक भार 30-35 किग्रा

विभिन्न आयु पर भार

पशु का विभिन्न आयु पर जन्म के समय भार, पशु की नस्ल, खानपान व वातावरण पर निर्भर करता है।

विभिन्न आयु पर पशुओं का शारीरिक भार (किग्रा०)

पशु की उम्र	वजन (किग्रा)	भैंस	जर्सी	होलस्टीन फ्रिजियन
जन्म के समय	20-25	25-30	25	43
6 माह पर	85-100	100-125	115	170
12 माह पर	150-185	180-235	215	310
18 माह पर	200-235	250-300	282	295
24 माह पर	250-275	350-375	350	500

प्रथम ब्यात पर गाय का शारीरिक भार 300 किग्रा तथा भैस का 400 किग्रा होता है।

2.3.4.4. प्रजनन गुण

मुख्य प्रजनन गुण निम्नलिखित है–

1. यौवनारम्भ पर आयु (Age of Puberty)– यह पौषण का स्तर, व्यक्तिगत गुण व नस्ल आदि पर निर्भर करती है। औसत किस्म के पोषण व प्रबंध के आधार पर ओसर (Heifer) की प्रजनन उम्र निम्नलिखित है–

भारतीय गोवंश की ओसर =2–2.5 वरष

संकर जाति की ओसर = 1.5-2 वर्ष

विदेशी नस्ल की ओसर =15 माह

2. प्रथम ब्यात पर आयु (Calving Age)– अच्छे पोषण का स्तर व प्रबंध होने पर प्रथम ब्यात पर आयु निम्नलिखित है–

भारतीय गोवंश =3.5 वर्ष

संकर जाति की ओसर = 2.5 वर्ष

विदेशी नस्ल =2.0 वर्ष

3. मद चक्र (Eestrus cycle)– पशुओ में दो गर्मियों (Heat) के बीच के समय को मद चक्र (Heat or Oestrus cycle) कहते है। गायों व भैंसो में मद चक्र 21 दिन का होता है।

4. गर्भावधि (Pregnancy Period)– गायो में 280 दिन तथा भैसों में 310 दिन होती है।

5. ब्याने से लेकर अगले गर्भाधान के बीच समय– गाभिन पशु के बच्चा देने के बाद अगला गर्भाधान 60-90 दिन के बीच हो जाना चाहिए। जिससे दो ब्यात के बीच कम अंतर होगा और पशु अधिक दिनो तक उत्पादन की स्थिति में रहेगा। यह अंतराल अधिक लम्बा होने की कारण पशु अनार्थिक हो जायेगा।

6. ब्यात में अंतर (Calving Interval)– यह गायो में 13 माह व भैसों में 16 महीने का अच्छा माना जाता है। डेयरी पशुओं में यह ब्यात अंतर यदि 12 माह रहता है तो वह बहुत ही अच्छा होता है। अत: चयन करते समय कम से कम ब्यात अंतरों वाले पशुओं को महत्व दिया जाता है।

2.3.4.5 उत्पादन गुण

यह पशु के दुग्ध उत्पादन से सीधा सम्बन्ध रखते है। मुख्य उत्पादन गुण इस प्रकार है–

1. प्रति ब्यात दूध का उत्पादन– भारतीय नस्ले जैसे साहीवाल कारपारकर व गिर आदि 2000-2500 ली० प्रति ब्यात तक दूध देती है। संकर नस्ल की गायें लगभग 3000-4000 ली तथा भैसे 150001800 ली प्रति ब्यात दूध देती है।

2. दुग्धकाल (Lactation Period)– भारत में गायो व भैंसों में औसतन दुग्धकाल 300 दिन का अच्छा माना जाता है।

3. अधिकतम दुग्ध उत्पादन (Maximum Milk production)– गायें व भैसे ब्याने के बाद औसतन 1-1-1/2 माह में अपने उस ब्याक के अधिकतम दुग्ध उत्पादन पर पहुँच जाती है।

4. शुष्क काल (Dry Period)– दूध देना बंद करने से लेकर पुन: दूध देना शुरु करने तक की अवधि को शुष्क काल कहते है। गायो व भैंसों में कम से कम 60 दिन शुष्क काल होना आवश्यक है। जिससे पशु अगले ब्याने तक शारीरिक तौर पर तैयार हो जाये। शुष्ककाल की अवधि लम्बी होने पर दूध का उत्पादन कम होता है। अत: वरण के समय कम अवधि के शुष्क काल वाले पशुओं का चयन करना लाभप्रद होता है।

2.3.5 चयन का आधार (Basis of selection)

पशुओं में आनुवंशिक क्षमता में सुधार पशु-प्रजनक की उत्तम आनुवंशिकता वाले पशु की पहचान की क्षमता पर निर्भर करती है। और ये उत्तम पशु आपस में सहवास के बाद उत्तम गुण वाले संतति उत्पन्न करते है।

वर्तमान में एक पशु के जीनोटाइप का अध्ययन इसके संबंधियो के फिनोटाइप के आधार पर किया जाने का प्रचलन है। संबंधी उसके पूर्वज, संतति अथवा भाई, बहन व चचेरे भाई बहन हो सकते है। गुणो के चयन में बहुत से कारक प्रभावित करते है जो निम्नलिखित है–

(1) चयन का उद्देश्य (Purpose of selection)

(2) गुणो का आर्थिक महत्त्व (The Economic value of each trait)

(3) प्रत्येक गुण के प्रदर्शन में अंतर (Pange in variation of expression of each trait)

(5) गुणो के बीच सहसंबंध (Correlation among the traits)

(6) चयन की लागत (The cost of the selection)

1. चयन का उद्देश्य (Purpose selection)– किसी डेयरी पशु का चयन करते समय एक निश्चित मात्रा में दूध उत्पादन की प्राप्ति ही मुख्य उद्देश्य होता है। इसके लिए कौन-कौन सी नस्ल पशु प्रजनक के लिए उपर्युक्त होगी, उसका पोषण स्तर क्या हो, इत्यादि पशुपालक स्वयं निर्धारित कर लेता है।

2. गुणों की वंशागतित्व (Heritability of traits)– वंशागतित्व (Heritability-h^2) माता-पिता के उत्तमता (Superiority) का वह भाग जो उनके संतति में स्थानांतरित होती है वंशागतित्व (Heritability) कहलाती है। माता-पिता में पायी जाने वाली स्थानांतप्ति न होने वाली वंशागतित्व (h^2) वातावरणीय प्रभाव तथा जीन अंतक्रिया (gene interaction) के फलस्वरूप होती है।

फार्म पशुओं (डेयरी गाय) में कुछ गुणों की वंशागतित्व इस प्रकार है–

गुण (Trait)	वंशागतित्व (h^2)
डेयरी गाय	
दूध उत्पादन	0.25
प्रोटीन (प्रतिशत दूध में)	0.50
कुल ठोस पदार्थ की मात्रा (दूध में)	0.250
वसा (दूध में प्रतिशत)	0.50
प्रौढ़ शरीर का आकार (Mature size)	0.40
प्रजनन गुण	0.0 to 0.10
गुणांक प्रकार (Type score)	0.20

(h^2) वंशागतित्व गुणो के चयन को निर्धारित करती है क्योंकि उच्च वंशागतित्व वाले गुणो का प्रदर्शन कम वंशागतित्व वाले गुणो से अपेक्षाकृत अधिक होता है। उदाहरण के लिए प्रजनन गुणो का वंशागतित्व कम (0.00–0.10) होता है, उत्पादन (दूध, अण्डे, ऊन) का मध्यम वंशागतित्व (0.15–0.35) और शारीरिक संरचना वाले गुणो का मध्यम से उच्च (0.40–0.60) होता है।

3. आर्थिक महत्व (Economic value of traits)– आर्थिक महत्व के गुणो जैसे दूध, अण्डे, ऊन आदि का वंशागतित्व कम होती है। अत: गुण के चयन में इन बातो को ध्यान में रखना चाहिए।

4. गुण के प्रदर्शन में विभिन्नता (Variability of traits)– चुने हुई पूर्वजो (माता-पिता) के गुणो के बीच विभिन्नता होने पर ही चयन प्रभावशाली होता है। यदि किसी गुण के लिए सभी पशु समान हो तो उनमें चयन प्रभावकारी नहीं होगा क्योंकि चयनित पशु सामान्य से बहुत अच्छा नहीं होगा। पशुओं में विभिन्नता विदेशी नस्ल के साड़, गाय से संकरण के फलस्वरूप बढती है।

5. सहसंबंधित गुण (Correlated Traits)– कभी-कभी कुछ गुण माता-पिता से संतति में साथ साथ जाते है। यह सहसंबंध निम्न लिखित प्रकार के हो सकते है–

(i) (लिंकेज (Linkage) सहलग्नता– इसमें दो जीन्स आनुवंशिक संचरण के समय साथ-साथ रहती है।

(ii) जब एक एलील दो या अधिक ऐसे लक्षणो को प्रभावित करते है जो कि आपस में संबंधित नहीं होते है ऐसी जींस को बहुप्रभावी (Pleietropic) कहते है या बहुप्रभाव (Multiple or Manifold effect) वाली जींस कहते है।

(iii) कुछ गुण एक-दूसरे से विपरीत सहसंबंध रखते है जैसे दूध की मात्रा बढ़ने से उसमें वसा की मात्रा कम जाती है। अत: चयन के समय इन सभी बातों का ध्यान रखना पड़ता है।

6. लागत (Cost of the selection)– पशु प्रजनक को चयन के बाद प्राप्त परिणाम का मूल्य और इस प्रक्रिया में आपी लागत का अनुमान लगाना चाहिए जिससे चयनित पशु आर्थिक रुप से लाभप्रद हो।

बहुत से गुणो का चयन किसी एक गुण के चयन गहनता (Selection intensity) को कम करता है। यदि चयन के लिए गुण है तो चयन गहनता # होगी। n गणों का चयन होने पर एक गुण चयन गहनता निम्नलिखित प्रकार है–

n गुण (n traits)	चयन गहनता (Selection intensity)
1	1.00
2	0.71
3	0.58
4	0.50
16	0.25
n	$\frac{1}{\sqrt{n}}$

2.3.6 चयन की विधियाँ (Method of selection)

चयन की विधियों का वर्गीकरण इस प्रकार है–

(i) प्राकृतिक चयन (Natural Selection)

(ii) कृत्रिम चयन (Artificial Selection)

1. व्यक्तिगत चयन (Individual Selection)

2. वंशावली चयन (Pedigree selection)

3. संतति परीक्षण (Progency testing)

4. चयन सूचक या कुल स्कोर विधि (Selection Index or Total score Method)

5. प्रजनक साड़ सूचक (Sire Index)

6. प्रदर्शन वृत्त चयन (Show Ring selection)

1. प्राकृतिक चयन (Natural Selection)– यह प्राकृतिक शक्तियों द्वारा योग्य जीवों का चयन किया जाता है और अयोग्य जीवों को नष्ट कर दिया जाता है।

2. कृत्रिम चयन (Artificial Selection)– यह मनुष्य द्वारा ऐच्छिक गुण वाले पशुओं का चयन किया जाता है। यह विभिन्न विधियों द्वारा किया जाता है।

2.3.6.1 व्यक्तिगत चयन (Individual Selection)

इसको समूह वरण (Mass selection) अथवा फीनोटाइपिक वरण (Phenotypic selection) भी कहते है। इस विधि के अन्तर्गत पशु के बाह्य गुण तथा उसका रंग रुप देखकर वरण किया जाता है, क्योंकि बाह्य गुण अधिकतर पशुओं में उनके आंतरिक जीन तथा पर्यावरण के सम्मिश्रण से बनते है। नर तथा मादा दोनों में उपस्थित गुणों के वरण के लिए यह विधि बहुत ही महत्वपूर्ण है। वरण की यह विधि एक साथ बहुत से पशुओं को चुनने में लागू हो सकती है क्योंकि इससे पशुओं के बारे में आवश्यक सूचना अधिक शीघ्र मिल जाती है। इस विधि के अनुसार हमें अमुक पशु के बारे में अनुमान होता है कि वह आगे चलकर क्या होगा? चयन की इस विधि को गुणांकन पत्र (Score card) विधि भी कहते है। आजकल यह विधि बहुत प्रचलित है।

व्यक्तिगत चयन के लाभ (Merits of Individual Selection)–

(1) नर-मादा दोनों में उपस्थित गुणों के चयन के लिए ढंग सर्वोत्तम है।

(2) एक ही समय में काफी बड़ी संख्या के चयन में यह लागू हो सकता है।

(3) कार्य पर आधारित होकर पशुओ का शीघ्र ही मूल्यांकन किया जा सकता है।

व्यक्तिगत चयन के दोष (Demerits of Individual Selection)–

1. इस विधि में चूँकि हम केवल पशु के बाह्य गुण देखकर का वरण करते है, अत: पशु के वास्तविक रुप का हमे ठीक पता नहीं चल पाता है कि आंतरिक रचना (Genotype) कैसी है?

2. कुछ गुण जैसे गायों का दूध उत्पादन, मुर्गियों में अण्डा उत्पादन केवल मादाओं द्वारा ही प्रदर्शित होते है। अत: प्रजनक साँड़ के चयन में इसकी उपयोगिता नहीं हो पाती है।

3. पशु के गुणों का अभिलेख (record) उनके परिपक्व हो जाने पर ही मिल पाता है। अत: तब तक चयन प्रक्रिया काफी आगे बढ़ चुकी होती है।

4. उस विधि के अनुसार उस पशु की प्रजनन क्षमता (Breeding value) कम अंकित होती है, जिसमें पैतृक गुण (Hereditary traits) कम आये हो।

2.3.6.2 वंशावली वरण (Pedigree selection)

इसको पारिवारिक वरण भी कहते है (Family selection)। इस विधि में पशुओं के पूर्वजों का वंशावली अभिलेख देखकर उनका वरण किया जाता है। पशु का चयन उनके पूर्वजों तथा भोई-बहन

जैसे निकटतम संबंधियो पर निर्भर होता है। वंशावली देखते समय उनके तीन पीढ़ियों के निकट संबंधी पूर्वजों जैसे– माता-पिता, दादा-दादी, परदादा-परदादी आदि के गुण भी देखे जाते है। चूँकि पूर्वजो ए ही पैतृक गुण संतति में आते है, अत: इसी तथ्य को इस विधि में ध्यान रखा जाता है। इस प्रकार इस विधि से पशु कैसा होना चाहिए, हमें इस बात का अनुमान हो जाता है। वंशावली के अनुसार चयन की यह वधि कम उम्र वाले पशुओं तथा विशेषकर उन गुणो का चुनाव के लिए अधिक उपयोगी है जो बहुधा पूर्वजो से संतान में आते है। उन पशुओं के लिए, जहाँ ऐच्छिक गुण जिनके लिए चयन करना है, केवल एक ही प्रकार के पशु नर या मादा में प्रदर्शित होते है जैसे दूध गाय द्वारा तथा अण्डा मुर्गियों के द्वारा, के लिए यह विधि काफी उपयुक्त है।

वंशावली देखते समय पशु के तीन पीढ़ियों के निकटतम संबंधियो के अभिलेख ही देखने चाहिए। पहली पीढ़ी (मां-बाप) से संतति में आधे अर्थात् 50-50% गुण आते है। इसी प्रकार दूसरी पीढ़ी यानि दादा-दादी से 1/4 (एक चौथाई) तथा तीसरी पीढ़ी से केवल 1/8 पैतृक गुण ही संतान में आते है। इसी कारण तीसरी पीढ़ी से ऊपर के पूर्वजों पर विचार करना लगभग बेकार सा ही है। क्योंकि उनके गुणों का आनुवंशिक संचरण पीढ़ी दर पीढ़ी कम होता चला जाता है। या यूँ कहा जा सकता है कि यह नहीं के बराबर होता है।

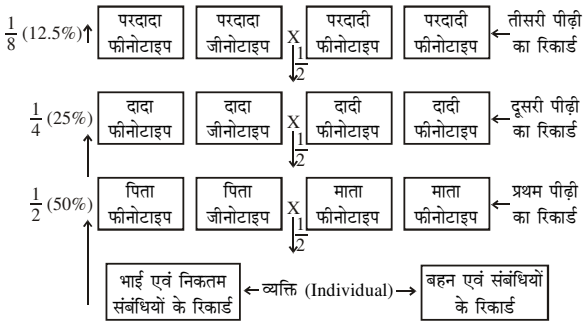

वंशावली अभिलेख तभी सत्य व ठीक रहते है जबकि उन्हें भली-भाँति रखे गये है। कभी-कभी वंशावली अभिलेख असमान तथा भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में तैयार किये गये होते है। जिससे पशु के चयन के समय उनकी उपयोगिता कम हो जाती है। अत: इनका मानवीकरण अति आवश्यक है। अत: वंशावली अभिलेख के आधार पर पशु का चयन करते समय उनके प्रकार, उत्पादन तथा वातावरण जिसमें पशु रहता है के अनुसार अभिलेखों का मानकीकरण आवश्यक होता है। ऐसा करने से पशु की वास्तविकता का पता लग जाता है।

जब विभिन्न उम्मीदवारों से असमान सूचनाए होती है तो प्रत्येक प्रकार के अभिलेखों का कितना महत्व दिया जाय, यह जानना कठिन होता है। उदाहरण के लिए दो पशु A व B के बीच सूचक (Index) की गणना इस प्रकार करते है–

$$I = b_1 (x_1 - \bar{x}) + b_2 (x_2 - \bar{x}) + \ldots\ldots + b (x_1 - \bar{x})$$

जहाँ, b_1= प्रथम प्रकार के अभिलेख का भार

x_1 = प्रथम संबंधी का फीनोटाइपिक अभिलेख

b_2= दूसरे प्रकार के अभिलेख का भार

x_2= दूसरे संबंधी का फीनोटाइपिक अभिलेख

$\bar{x}$ = गाय समूह का औसत फिनोटाइप

इस विधि से उच्चतम सूचक (Highest Index) वाले पशु का चयन किया जाता है।

b_1 निम्नलिखित पर आधारित होती है–

(i) वंशागित्व (heritability)

(ii) संबंधी जिनका अभिलेख उपलब्ध है

जब संबंधी का अभिलेख उपलब्ध होता है तो उसका भार (b)-Rh_2 होता है। जहाँ, h_2= वंशागतितित्व तथा R=उम्मीदवार व संबंधी के बीच आनुवंशिक संबंध होता है। इस प्रकार यदि पशु A का उसकी माता पर आधारित अभिलेख (XA) तथा पशु B का दादी पर आधारित अभिलेख (XB) है तो सूचक (Index) होगा–

यदि I_A, I_B से अधिक है तो A का चुनाव किया जायेगा और यदि I_B, I_A से अधिक है तो पशु B का चुनाव किया जायेगा।

वंशावली चयन का लाभ (Merits of Pedigree selection)

1. जब पशुओं के वैयक्तिक अभिलेख उपलब्ध न हो तो इस विधि के आधार पर चयन संभव हो जाता है।

2. इसके द्वारा कम आयु में या परिपक्वता से पहले भी वरण किया जा सकता है।

वंशावली चयन की कमियाँ (Demerits of Pedigree Selection)–

1. इस विधि में पूर्वजों पर अनावश्यक दबाव पड़ता है और इस प्रकार अच्छे पूर्वज की संतति के प्रति पक्षपात होकर पहले से एक अच्छी धारणा बन जाती है। चाहे वह वास्तव में उतनी अच्छी न हो। अत: ऐसे पशु के चयन करने पर कभी-कभी उल्टे परिणाम निकलते है।

2. यदि गुण जिनके लिए चयन करना है, उसका वंशागतित्व (Heretability) कम है तो संबंधियो के अभिलेख सच्चे पथ-प्रदर्शक नहीं होते है।

3. एक यूथ (Herd) में अधिकतर अंत: प्रजनन (Inbreeding) करने से पशुओं की वंशावली लगभग एक सी हो जाती है। अत: इसमें आगे वंशावली चयन नहीं किया जा सकता है।

2.3.6.3 संतति परीक्षण (Progeny testing)

इसको जीनोटाइपिक वरण भी कहा जाता है। इस विधि अधिकतर सांड़ों के चयन में ही प्रयुक्त

होती है,जो उनमें पैदा हुई बछियों के बड़े होने पर उनका उत्पादन देखकर, साँड़ की प्रजनन-क्षमता का मूल्यांकन किया जाता है। जिस साड़ की बछियों का उत्पादन अधिक होता है, उसे ही सर्वश्रेष्ठ माना जाता है।

उदाहरण: यदि उन (A), ब (B) और स(C) तीन साड़ में से उत्तम सांड का चयन है तो हम इसे निम्नलिखित प्रकार से करेंगे–

औसत दुग्ध उत्पादन	औसत वसा	% उत्पादन में अंतर	
साँड A			
गाभिन 8 गायें	2000 लीटर	4.0	
पैदा 6 बछिया	1500 ली०	4	-500 लीटर दूध
साँड़ B			
गार्भित 8 गायें	1600 ली०	4.8	+800 ली० दूध
पैदा 6 बछियाँ	2400 ली०	5.0	+0.2% वसा
साँड़ C			
गर्भित 8 गाये	1800 ली०	4.6	
पैदा 6 बछियां	2300 ली०	4.6	+500 ली० दूध

इस प्रकार हम देखते है कि सांड B इन तीनों में सबसे अच्छा है क्योंकि इसने अपनी बछियों का औसत उत्पादन सबसे अधिक बढ़ाया है तथा साँड़ A सबसे खराब है क्योंकि इसने अपनी बछियों का औसत उत्पादन उनकी माँ से भी कम दिया है। चूँकि नर व मादा दोनों में ही अपनी संतति में दूध व वसा पैदा करने वाले गुण होते है और इसके लिए दोनों ही आनुवंशिक संचरण में उत्तरदायी होते है। माँ की क्षमता हमें ज्ञात है अत: संतति के उत्पादन में जो घटी-बढ़ी होगी, वह साँड़ के कारण होगी। इस प्रकार चयन के इस ढंग से हमें पशु के आंतरिक गुणों एवं उसकी वास्तविकता का पता लग जाता है। इसी कारण चयन की यह विधि श्रेष्ठ मानी जाती है। इसके द्वारा माता-पिता दोनो की अपने गुणो का संतति में आनुवंशिक संचरण क्षमता का पता चलता है जिससे गाय और साँड़ का चयन अपनी संतति की उत्पादकता क्षमता के आधार पर चयन किया जा सकता है। इस विधि के द्वारा हमें पशु की वास्तविक प्रजनन क्षमता का पता चलता है। पशुधन के उचित विकास के लिए संतति परीक्षण काफी उपयोगी है।

संतति परीक्षण (Progency testing) के आधार पर चयन करना उन्हीं पशुओं में अधिक लाभप्रद है जो अपने जीवनकाल में काफी बच्चे पैदा करते है। इसी कारण यह ढंग मुर्गियो तथा सुअरो के चयन में अधिक लागू होता है। क्योंकि इनके बच्चे भी अधिक होते है और वे शीघ्र ही बड़े होकर अपनी उत्पादन क्षमता प्रकट कर देते है। गायें में चयन की यह विधि केवल साड़ों के चयन के लिए ही उपयुक्त होती है। गायों में यह विधि लागू होने में कठिनाई यह है कि वे अपने सम्पूर्ण जीवनकाल में 5-6 बच्चे ही दे पाती है जिसमें से कुछ बछड़े तथा कुछ बछियां होती है। साथ ही सभी बछियां अपना उत्पादन भी प्रदर्शित नहीं कर पाती है क्योंकि इनमें से कुछ की मृत्यु संभव है। इस कारण एक गाय से उसके जीवनकाल तक 2-3 बछियों से अधिक नहीं प्राप्त कर सकते है। जबकि संतति परीक्षण के लिए कम से कम 5-6 बछियां होनी आवश्यक है। अधिक से अधिक संतति होने पर चयन की शुद्धता

(Selection accuracy) बढ़ती है। चयन सूचक भार (Selection Index weight) और शुद्धता (Accuracy) को निम्नलिखित सूत्र से ज्ञात किया जा सकता है–

चयन सूचक भार (Selection Index weight)=

शुद्धता सूचक (Accuracy Index)= $\sqrt{\frac{2nh^2}{4+(n-1)}}$

जहाँ, n = संतति की संख्या जिसमें प्रत्येक संतति का उत्पादन अभिलेख

x = n संततियों अभिलेख का औसत (Average for the n progeny record)

H = तत्कालीन उस यूथ के सांततियों का औसत (Average of contemporary herdmates of progency)

h^2 = वंशागतित्व (Heritability)

सूचक Index Value) और उम्मीदवार के वास्तविक आनुवंशिक गुण के बीच सहसंबंध स्थापित किया जाता है।

चयन सूचक भार तथा शुद्धता, संतति परीक्षण के लिए

Weight and Accuracy of selection Index for progency test of one record on each of a progeny)

संतति की संख्या (n)	चयन सूचकभार (Selection Index weight)					शुद्धता (Accuracy)				
	वंशागतित्व					वंशागतित्व				
	0.1	0.2	0.3	0.5	0.75	0.1	0.2	0.3	0.5	0.75
1	0.05	0.1	0.15	0.25	0.38	0.16	0.22	0.27	0.35	0.44
2	0.1	0.19	0.28	0.44	0.63	0.22	0.31	0.37	0.47	0.56
3	0.14	0.27	0.39	0.60	0.83	0.26	0.37	0.44	0.55	0.64
10	0.41	0.69	0.90	1.18	1.40	0.45	0.69	0.67	0.77	0.84
100	1.44	1.68	1.78	1.87	1.92	0.95	0.92	0.94	0.97	0.98

संतति परीक्षण की कमिया (Demerits)–

1. इस विधि में हमें एक साथ कम से कम 5 बछियों की आवश्यकता पड़ती है अत: परीक्षण काफी खर्चीला पड़ता है।

2. बछियां 3-4 वर्ष की आयु में परिपक्व होकर उत्पादन करने के लिए तैयार हो पाती है।

अत: इतना अधिक समय लग जाता है कि सांड़ के परीक्षित होने से पूर्व ही प्रजनन की दृष्टि से उसका मूल्यवान जीवन कीफी व्यतित हो चुका होता है।

3. जितनी बछियां पैदा होती है उनमें उत्पादन की आयु तक लगभग आधी या और अधिक बीमारी, बाझपन अथवा अन्य किन्ही कारणों से प्रजनन के योग्य नहीं रहती है। अत: इस प्रकार कभी भी एक तिहाई से अधिक सांड़ इससे परीक्षित नहीं हो सकते है।

2.3.6.4 कुल स्कोर विधि या चयन सूचक (The total score or selection index method)

इसे स्मिथ और हैलेज (Smith and Hazel) द्वारा विकसित किया गया। इसमें प्रत्येक गुण के लिए उसके आर्थिक मूल्य, उसके वंशागतित्व और दूसरे गुणों से अंत: संबंध के आधार पर महत्व (Weightage) दिया जाता है। इस प्रकार गुणो का कुल स्कोर तैयार किया जाता है। यह विधि अन्य दूसरे विधियों की अपेक्षा अधिक सक्षम और शीघ्रता से प्रजनन के लिए उत्तम पशुओं का चयन कर सकती है। पशु प्रजनको द्वारा चयन सूचक या कुल स्कोर विधि का अब वर्तमान समय में काफी उपयोग किया जाता है। इसको व्यक्तिगत चयन वंशावली चयन संतति परीक्षण के लिए उपयोग किया जा सकता है।

2.3.6.5 प्रजनक साँड़ सूचक (Sire Index)

प्रजनक सांड़ सूचक (Sire index) एक संख्यात्मक अंक है जो सांड़ का संतति-परीक्षण (Progency test) है जो उसकी प्रजनन क्षमता तथा जीनोटाइप को प्रदर्शित करती है। सांड़ के चयन का यह उत्तम ढंग है। इससे सांड़ के अंदर वास्तव में क्या गुण है का पता चलता है साथ ही वह अपनी संतति में अपने गुणो को कितना पहुंचाने (आनुवंशिक संचरण में) की क्षमता रखता है, जाना जा सकता है। इस परीक्षण के लिए साँड़ का विभिन्न गायों से सहवास कराया जाता है। तत्पश्चात् पैदा हुई वधियो को पाला जाता है। उनकी उत्पादतकता के आधार पर साँड़ का मूल्यांकन किया जाता है। उनकी उत्पादकता के आधार पर साँड़ का विभिन्न गायों से सहवास कराया जाता है। तत्पश्चात् पैदा हुई बछियों को पाला जाता है। उनकी उत्पादकता के आधार पर साँड़ ही साँड़ का सूचकांक (Sire index) निकाला जाता है। इस प्रकार चयनित सांड़ को सिद्ध साँड़ (Proven sire) कहते है। कुछ वृषभ सूचकांक इस प्रकार है–

1. बछियों का औसत उत्पादन सूचकांक (Daughters average index)
2. समान संरक्षक सूचकांक (Equal parental index)
3. रीग्रेशन सूचकांक (Regression index)
4. बछियों का संशोधित औसतन सूचकांक Corrected daughters average index)
5. अमेरिकन सूचकांक (American index)
6. रीग्रेरुड लीस्ट स्क्वायर्स (Regrssed Least squares or RLS)

1. बछियो का औसत उत्पादन सूचकांक (Daughters average index)– इसमें वृषभ के द्वारा पैदा की गयी सभी बछियों को पालकर उनके उत्पादन का लेखा-जोखा रखते है। फिर सभी बछियों के उत्पादन का औसत निकाला जाता है जिसे बछियों का औसतन सूचकांक कहते है। यह

संतोषजनक है तो कहा जा सकता है कि सांड़ अच्छी किस्म का है।

2. समान संरक्षक सूचकांक (Equal parantal index)– यह सूचकांक इस बात पर आधारित है कि बछियों का उत्पादन माता-पिता के उत्पादन का मध्य होता है। इसकी गणना निम्न सूत्र द्वारा की जाती है–

समान संरक्षक सूचकांक (E.D.I) = 2D – Dam

जहाँ, D= बछियां का औसत उत्पादन (Daughters production)

Dam= माताओं का औसत उत्पादन (Dam's Production)

सीमाएं– कभी-कभी यह सूचकांक बहुत अधिक या कम होता है। इसका कारण यह होता है कि असामान्य तौर पर या तो अत्यधिक या बहुत कम उत्पादन वाली गायों का प्रयोग किया हो या फिर बछियों एवं गायों के रखरखाव और पालन-पोषण में अत्यधिक असमानता रही हो। अन्यथा यह बछियों के औसत सूचकांक असमानता रही हो। अन्यथा यह बछियों के औसत सूचकांक से अच्छा है। चूँकि पक्षपात का दोष नहीं आ पाता।

3. रीग्रेशन सूचकांक (Regression Index)– यह समान संरक्षक सूचकांक तथा उन्हीं पशुओं के नस्ल के औसत उत्पादन को जोड़कर मोग को 2 से भाग दिया जाता है।

रीग्रेशन सूचकांक (R.I.)=E.P.I. + नस्ल का औसतन उत्पादन (Breed production)/2

वैज्ञानिक राइस (Rice) के अनुसार जब कुछ गायों का औसत उत्पादन उस नस्ल के औसत उत्पादन की उपेक्षा घटता या बढ़ता है तो उनसे पैदा हुई बछियों का औसत उत्पादन अपनी माँ के उत्पादन से उस नस्ल के औसत उत्पादन की अपेक्षा आधा ही घटता या बढ़ता है।

4. बछियों का संशोधित सूचकांक (Corrected Daughter's Average Index) (CDAI)– यह ICAR द्वारा विकसित किया गया है। इस सूचकांक में माताओं (Dams) एवं बछियों के उत्पादन को रीग्रेशन (Regrassion) को समायोजित किया गया है जो इस सूत्र द्वारा ज्ञात किया जाता है–

CDAI = D– 6 (Dam–AV)

जहाँ, D=बछियों का प्रथम ब्यांत में औसतन उत्पादन

b= माता पर बछियों के उत्पादन का अंत वृषभ रीग्रेसन (Intra-sireregrassion of damghters production on Dam)

Av.= झुंड का औसत उत्पादन (Herd Average production_

Dam= माताओं का औसत उत्पादन

Av=झुंड का औसत उत्पादन (Herd average production)

5. अमेरिकन सूचकांक (American Index)– इसमें माँ तथा बछिया दोनो का औसत उत्पादन लेकर साड़ का मूल्यांकन किया जाता है। इसकी गणना अग्र प्रकार से की जाती है–

वृषभ सूचकांक– 2M–B जहाँ, M=बछियों का औसत उत्पादन B=मां का औसत उत्पादन

(6) रीग्रेस्ट लीस्ट स्क्वायर्स (Regressed Least squares or RLS)– यह नयी विधि क्वीसलैंड से विकसित की गयी है। इस विधि में 100 को आधार मानकर RLS प्रुफ परिणाम

एक सूची के रूप में छपे उपलब्ध होते है। किसी वृषभ का इस विधि से यदि सूचकांक 115 है तो वह औसत से 15% अधिक अच्छा है। और इससे नस्ल सुधार संभव है। इसके विपरीत यदि उसका सूचकांक 93 है वह औसत से 7% कम है और इसे प्रजनन के लिये उपयोग में नहीं लाया जा सकता। इस विधि में केवल एक कठिनाई यह है कि एक साथ 12 सांड़ों या उनकी बछियों का एक से अधिक ब्यांत के परिणामों का विश्लेषण करने के लिए एक बड़े कम्प्यूटर की आवश्यकता पड़ती है।

2.4 प्रदर्शनवृत्त चयन (Showing - ring selection)

यह विधि पशु मेलों तथा पशु-प्रदर्शिनियों में पशुओं के चयन के लिए प्रयुक्त होती है। इसमें पशुओं के बीच प्रतियोगिता होती है और अंत में कोई इसमें विजेता घोषित होता है। इसमें पशुओं का उनके रुप तथा प्रकार के आधार पर वरण होता है। पशु के प्रकार और उत्पादन क्षमता में काफी घनिष्ठ संबंध है। इस विधि में पृथ्वी पर लकड़ी या लोहे के लगभग 2-2.5 मीटर लम्बे डण्डे दूर-दूर वृत्ताकार आकृति में गाड़कर उनको एक दूसरे से रस्सी द्वारा संबंधित करके एक दोहरा प्रदर्शन वृत्त बनाया जाता है जिसमें एक ओर खुला हुआ प्रवेश द्वार होता है। भीतरी वृत्त में चयन में सम्मिलित होने वाले पशु, चयन कर्ता के अनुसार पशुपालकों द्वारा धीरे-धीरे चलाये जाते है। अब निर्णायक (Judges) उनके प्राकर तथा रुप के आधार पर चयन करके उनके सिरों पर विजय चिन्ह लगा देते हैं।

लाभ (Advantages of show-ring selection)–

1. इसके द्वारा किसी नस्ल, पशु प्रजनक तथा पशुपालन व्यवसाय का खूब प्रचार होता है।

2. इस अवसर पर विभिन्न स्थानों से आये हुए पशुओं का क्रय-विक्रय होता है।

3. पारस्परिक सम्पर्क से विभिन्न पशु प्रजनक विचार विनिमय होता है।

4. साधारण वर्ग के पशुपालकों को पशुओं के पालन पोषण सम्बन्धी अच्छी सूचनायें प्राप्त हो जाती है।

कमियां (Disadvantages)–

1. इससे कभी-कभी दोषपूर्ण पशु का भी चयन हो जाता है क्योंकि पशु पालको द्वारा पशुओं का दोष छिपाया जाता है।

2. कभी-कभी पशुपालकों द्वारा पशु के दाँतों को रेती से रेतकर ऐसा बना देते है जिससे कि अधिक उम्र का पशु भी यदि पूरी तरह से स्वस्थ हो तो जवान दिखायी देता है।

3. कभी-कभी चयनित पशु उतना उत्पादक नहीं होता है।

4. प्रदर्शनी का दूध निकालना बंद कर देते है। ये पशु प्रदर्शन के समय अधिक दूध देकर अपनि अधिक अच्छी उत्पादन क्षमता प्रदर्शित करते है।

5. पशु की प्रजनन क्षमता का ज्ञान नहीं होता है।

2.5 सारांश (Summery)

भारत में पशुं की बड़ी संख्या देशी मिश्रित तथा छोटे आकार के होते है। इनका उत्पादन बहुत कम होता है। भारत में गौवंश का 82% तथा भैस का 50% संख्या इस वर्ग में आता है। जबकि इनका

शेष 18% (28 नस्ले) गायें व 50% भैस की संख्या शुद्ध नस्ल की है। यद्यपि भारत दूध उत्पादन में प्रथम स्थान पर है परन्तु पशुओं की प्रतिपशु उत्पादकता 987 किग्रा०/ब्यांत है जबकि विश्वस्तर पर 2038 किग्रा है। अत: हमारे देश में पशुओं में सुधार की आवश्यकता है। पशुओं का सुधार चयन द्वारा किया जाता है। चयन द्वारा इच्छित गुणों को पशुओं में ऐसे उचित क्रमों में लगाते है जिससे वे अधिक लाभकारी व उत्पादक सिद्ध हो। पशुओं में चयन प्रजनन कला की आधारशिला रही है। केवल चयन या प्रजनन विधियों से ही पशुओं का सुधार संभव नहीं है।बल्कि इन दोनों की सामूहिक उपयोगिता ही पशुओं की शीघ्र उन्नति का सर्वोच्च विधि है। चयन तीन मुख्य विधियाँ– वैयक्तिक, वंशावली व संतति परीक्षण है। इस इकाई द्वारा विभिन्न चयन विधियों की उपयोगिता, लाभ व हानि का ज्ञान होता है। इसमें सांड़ के चुनाव के लिए संतति परीक्षण (Progeny testing) सबसे उत्तम आधार है। गायों का वंशावली के आधार पर चयन करना अचछा रहता है।

2.6 उपयोगी पुस्तकें

(1) पशुपालन एवं दुग्ध विज्ञान - डा० जगदीश प्रसाद, कल्याणी पब्लिशर्स लुधियाना

(2) पशुपालन एवं पशु चिकित्सा विज्ञान - डा० देवनारायण पाण्डेय

(3) एनिमल जेनेटिक्स एण्ड ब्रीडिंग प्रैक्टिसेस - डा० जगदीश प्रसाद, इण्टरनेशनल बुक डिस्ट्रीब्यूटिंग कम्पनी, लखनऊ

2.7 संबंधित प्रश्न

(1) चयन का क्या तात्पर्य है? चयन के प्रमुख उद्देश्य क्या है ?

(2) कृत्रिम चयन कितने प्रकार का होता है? संतति परीक्षण का वर्णन करें।

(3) डेरी पशुओं के आर्थिक गुणों पर प्रकाश डालें।

(4) पशु चयन के मुख्य आधार क्या है?

(5) व्यक्तिगत चयन कैसे किया जाता है तथा इससे क्या लाभ है?

(6) वंशावली चयन कैसे करते हैं? तथा इसके क्या लाभ है?

(7) संतति परीक्षण के लाभ एवं कमियों को बतायें।

इकाई 3 : पशु प्रजनन की पद्धतियाँ

इकाई की रूपरेखा

3.1. प्रस्तावना (Introduction)

3.2. उद्देश्य (Objectives)

3.3. पशु प्रजनन (Breeding of Animal)

3.3.1. अंत: प्रजनन (Inbreeding)

3.3.2. बहि: प्रजनन (Out breeding)

3.3.2.1 भिन्न संकरण (out crossing)

3.3.2.2 संकरण (Cross-Breeding)

(i) क्रिस क्रासिंग (Criss crossing)

(ii) त्रिसंकरण (Triple crossing)

(iii) चरम संकरण (Top crossing)

(iv) पितृ संकरण (Back Crossing)

3.3.2.3 प्रसंकरण (Hybridization)

3.3.2.4 क्रमोन्नति (Grading up)

3.4. भारत में संकर प्रजनन (Cross-breeding In India)

3.5. सारांश

3.6. उपयोगी पुस्तकें

3.7. संबंधित प्रश्न

3.1 प्रस्तावना (Introduction)

पशु प्रजनन का मुख्य उद्देश्य अपने पशुओं की उन्नति करके आदर्श समूह (Herd) बनाना है, जो मनुष्य जाति के लिए अधिक लाभप्रद सिद्ध हो सके। प्रजनन की विधियां (Method of breeding) तथा वरण (Selection) ही पशुधन सुधार हेतु पशु प्रजनक के पास दो प्रमुख उपलब्ध यंत्र है।

हमारे देश को गायों की 80% संख्या देशी, लगभग अनार्थिक व बेकार सी है। अत: इनमें उत्पादन क्षमता में सुधार लाने के लिए उपयुक्त प्रजनन विधियों का पशुपालकों द्वारा उपयोग किया जाना अति आवश्यक है। जिससे पशुधन की आनुवंशिक क्षमता में सुधार कम से कम खर्च में किया जा सके। इसके लिए पशु पालकों को विभिन्न प्रजनन विधियों के गुण-दोष को जानना तथा उसका पशुधन पर पड़ने वाले प्रभाव के बारे में जानना बहुत ही जरूरी है। पिछले कई दशको से बड़ी संख्या में अधिक दूध उत्पादन करने वाले पशु और उनके वीर्य का आयात कर वर्णसंकर पशुओं को तैयार किया जा रहा है जिससे पशु प्रजनन की विधियों का महत्व और अधिक बढ़ गया है।

3.2 उद्देश्य (Objectives)

1. डेयरी पशुओं की प्रजनन की विभिन्न प्रणालियों की जानकारी।
2. विभिन्न प्रजनन विधियों का पशुधन सुधार पर प्रभाव।
3. विभिन्न प्रजनन विधियों के गुण व दोष ज्ञात करना।
4. विभिन्न प्रजनन प्रणालियों का पशुपालकों के लिए महत्व।
5. दूध उत्पादन में वृद्धि।
6. प्रजनित संतति रोगरोधी, अधिक उत्पादक हो।
7. संतति की प्रजनन क्षमता अच्छी हो।

3.3 पशु प्रजनन (Animal Breeding)

समस्त जीवधारियों का प्रजनन नर-मादा के मिलन से प्रारम्भ होता है। अत: नर व मादा पशु का संतान की उत्पत्ति के लिए पारस्परिक सहवास ही पशु प्रजनन कहलाता है। प्रकृति में अच्छे बुरे पशुओं का प्रजनन होता रहता है जिससे अपेक्षाकृत अनार्थिक पशु पैदा होते है। अत: अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए अच्छे गुण वाले नर-मादा पशुओं का चुनाव बहुत आवश्यक जिससे इनसे प्राप्त संततियों में अच्छे गुण आ सके ताकि अधिक उत्पादन हो व पशुपालक को भरपूर लाभ मिल सके। प्रजनन का उद्देश्य पशुओं में नस्ल सुधार करके उनमें आवश्यकतानुसार आनुवंशिक गुणों का समावेश करना है जिससे ऐसा पशु झुण्ड (herd) बनाया जा सके जो कि पशु पालकों के लिए लाभकारी हो। विभिन्न प्रजनन विधियों के उपयोग के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित है–

1. प्रजनन से पैदा हुई संततियों की वृद्धि दर अच्छी हो।
2. बछिया यथाशीघ्र बच्चे पैदा करे तथा दूध उत्पन्न करने के काम आये।
3. संतति में रोगरोधक शक्ति अधिक हो।
4. पशु अधिक से अधिक मात्रा में दुग्ध उत्पादन कर सके।
5. पशु का जीवनकाल लम्बा हो जिससे अधिक दूध दे सके।
6. संतति वयस्क बनकर उसका डील-डौल व शारीरिक बनावट नस्ल के अनुरूप हो।
7. पशु बांझ न हो व प्रजनन क्षमता अच्छी हो।

पशुओं में उन्नति के लिए जो प्रजनन विधिया अपनायी जाती है उनका वर्गीकरण निम्नलिखित है–

1. प्राकृतिक प्रजनन (Natural Breeding)
2. कृत्रिम प्रजनन (Artificial Breeding)

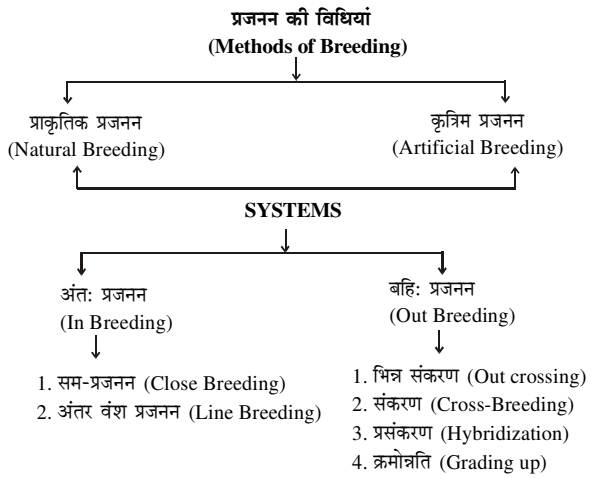

3.3.1. अंतः प्रजनन (Inbreeding)

प्रजनन की वह विधि जिसमें 4-5 पीढ़ियों तक के संबंधित नर मादाओं में परस्पर सम्भोग होता है, अंत: प्रजनन कहलाती है। इसे निम्न प्रकार वर्गीकृत किया गया है–

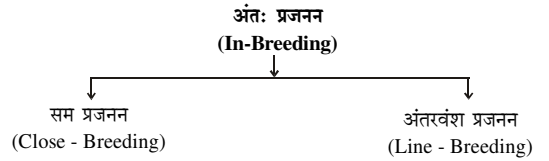

3.3.1.1 सम प्रजनन (Close-Breeding) :– यह बिल्कुल ही निकट के संबंधी नर व मादा पशुओं का पारस्परिक सहवास (Mating) है। जैसे- सगे भाई-बहन, मां-बेटे, तथा पिता-पुत्री में सहवास होना।

3.3.1.2 अंतर वंश प्रजनन (Line-Breeding) :– सम प्रजनन के अतिरिक्त जो भी प्रजनन 4-5 पीढ़ी के संबंधित नर व मादाओं में होता है अंतरवंश प्रजनन कहलाता है। अत: इस विधि सम प्रजनन की अपेक्षकृत दूर के संबंधित पशुओं में सहवास होता है। जैसे- चचेरे भाई-बहन, पोती-दारा, पोता-दादी। इस विधि का प्रयोग प्राय: किसी अच्छे सांड़ के गूणों को यूथ (herd) में बनाये रखने के निमित्त होता है।

अंत: प्रजनन का उद्देश्य (Object of In-Breeding):– अंत:प्रजनन का मुख्य उद्देश्य पशुओं में ऐच्छिक गुणों को स्थिर करना है। बुनियादी पशुओं में पहले से ही उपस्थित अच्छे गुणों को स्थिर करने का अंत:प्रजनन एक प्रणाली है।

लाभ (Advantages) :–

1. अंत: प्रजनन से संतानों में समानता (Homozygosity) बढ़ती है क्योंकि इसके द्वारा समानता वाले जीन युग्मों (gene pairs) की शरीर में वृद्धि होती है तथा अ-समान जीन युग्म कम हो जाते (Decreases heterozygosity) है।

2. अंत: प्रजनन से पशुओं के चयन में सहायता मिलती है। इस प्रकार पैदा हुए जो ऐच्छिक गुण नहीं दर्शाते, उन्हें आसानी से छांटकर अलग किया जा सकता है।

3. इस प्रकार इस विधि में साँड़ों की अपनी संतति पर अपने गुणों की छाप छोड़ने की क्षमता (prepoteney) अधिक बढ़ती है, जिससे अच्छे-अच्छे गुण संतति में पहुँच सकते हैं।

4. इस विधि में हमें अच्छे तथा शुद्ध पशु प्राप्त होते है।

5. पशुओं में अप्रभावी लक्षणों के प्रकट करने के लिए यह विधि सर्वश्रेष्ठ है। इसमें पशुपालक को इस बात का शीघ्र पता लग जाता है कि उसके पशुओं में क्या गुण अथवा अवगुण विद्यमान है।

6. अंत: प्रजनन से आनुवंशिकी (Heredity) समानता बढ़ती है तथा विभिन्नता (Variation) कम होती है।

अंत: प्रजनन से हानियां (Disadvantages of Inbreeding):–

1. लगातार अंत: प्रजनन करने से पशुओं की बढ़ोत्तरी कम होती है।

2. उनकी ओजस्विता (Vigour) में कमी आ जाती है।

3. उनमें रोगप्रतिरोध क्षमता कम होती है जिससे अंत: प्रजनन से उत्पन्न संततियों में मृत्युदर अधिक पायी जाती है।

4. अंत: प्रजनन द्वारा घातक-कारक (Lethal-Factors) भी प्रकट हो जाते है।

5. उनकी उत्पादन शक्ति में कमी आ जाती है।

6. ऐच्छिक गुणो को स्थिर करते समय कभी-कभी अनेच्छिक गुण भी स्थिर हो जाते है।

7. संततियों में समानता (homozygosity) के बढ़ने से घातक कारक भी प्रकट होते है जिससे अधिकांश संततियों मर सकती है अथवा अपंग हो सकती है या अनुत्पादक हो सकती है।

अंत: प्रजनन की उपयोगिता (Utility of In-Breeding):– अंत:प्रजनन उसी यूथ (herd) में करना चाहिए जो औसत दर्जे से अच्छा है तथा काफी बड़ा है। इसके अतिरिक्त, पशु प्रजनक को इस विधि के लाभ-हानि का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए।

औसत दर्जे से नीचे, व्यावसायिक एवं थोड़े पशुओं के यूथ में तथा पशु-प्रजनक के अनभिज्ञ होने पर इस ढ़ंग की उपयोगिता सर्वथा वर्जित है।

संबंध (Relationship):– पशुओं का अपने पूर्वजों से कुछ ना कुछ संबंध तो होता ही है। परन्तु 4-6 पीढ़ी के बीच तक संबंध विशेष प्रकार का माना जाता है। पशु के संबंधी पूर्वज तथा सांपार्श्विक (Collateral) होते है। अंत: प्रजनन में संबंध (Relationship) की गणना निम्न प्रकार भी की जा सकती है–

संबंध (Coefficient of Inbreeding) = $\sum \left(\frac{1}{2}\right)^{n+n'+1}$

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त
विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

खण्ड

02

पशु प्रजनन

इकाई-4

पशु जनन एवं प्रसव के समय प्रबंध

इकाई-5

पशु बाँझपन एवं निवारण

इकाई-6

कृत्रिम गर्भाधान

CLPS - 03
पशु पालन : प्रबन्धन,
प्रजनन एवं पशु रक्षा

परामर्श-समिति

प्रो0 केदार नाथ सिंह यादव	**कुलपति - अध्यक्ष**
डॉ0 हरीशचन्द्र जायसवाल	**कार्यक्रम संयोजक**
डॉ0 रत्नाकर शुक्ल	**कुलसचिव - सचिव**

परिमापक

प्रो0 जगदीश प्रसाद — संकाय प्रमुख, पशुपालन एवं पशु चिकित्सा संकाय इलाहाबाद एग्रीकल्चर युनिवर्सिटी, इलाहाबाद

सम्पादक

प्रो0 आर0 के0 यादव — अवकाश प्राप्त प्राचार्य एवं विभागाध्यक्ष पशुपालन एवं डेरी विज्ञान विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी

CLPS - 03 पशु पालन : प्रबन्धन, प्रजनन एवं पशु रक्षा

लेखक मंडल

खण्ड : एक	:	डॉ0 राम प्रवेश, तकनीकी सहायक, डॉ0 जयसिंह से संबद्ध पशुपालन एवं डेरी विज्ञान काशी हिन्दू-विश्व विद्यालय, काशी
दो	:	डॉ0 राम प्रवेश, तकनीकी सहायक, डॉ0 जयसिंह से संबद्ध पशुपालन एवं डेरी विज्ञान काशी हिन्दू-विश्व विद्यालय, काशी
तीन	:	डॉ0 शीतला प्रसाद वर्मा, वरिष्ठ प्रवक्ता (पशुपालन एवं दुग्ध विज्ञान) कुलभास्कर आश्रम स्नातकोत्तर महाविद्यालय, इलाहाबाद
चार	:	डॉ0 शीतला प्रसाद वर्मा, वरिष्ठ प्रवक्ता (पशुपालन एवं दुग्ध विज्ञान) कुलभास्कर आश्रम स्नातकोत्तर महाविद्यालय, इलाहाबाद
पाँच	:	डॉ0 शीतला प्रसाद वर्मा, वरिष्ठ प्रवक्ता (पशुपालन एवं दुग्ध विज्ञान) कुलभास्कर आश्रम स्नातकोत्तर महाविद्यालय, इलाहाबाद

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद की ओर से डॉ. रत्नाकर शुक्ल, कुलसचिव द्वारा प्रकाशित, तथा नितिन प्रिन्टर्स, 1, पुराना कटरा, इलाहाबाद द्वारा मुद्रित। 2006 फोन - 2548837

खण्ड दो का परिचय : पशु प्रजनन

पशुधन उत्पादन प्रणाली के तृतीय प्रश्न पत्र का खण्ड दो पशु प्रजनन से सम्बन्धित है। यह खण्ड तीन इकाईयों में विभक्त है। इकाई प्रथम में पशु जनन एवं प्रसव के समय प्रबन्ध, इकाई द्वितीय में पशु बाँझपन एवं निवारण तथा इकाई तृतीय में कृत्रिम गर्भाधान संबंधी विवरण प्रस्तुत हैं।

इकाई चार के पशु जनन एवं प्रसव के प्रबंध को 5 उपशीर्षकों में बांटा गया है।

(1) नर जननांग के भाग एवं कार्य

(2) मादा जननांग के भाग एवं कार्य

(3) मद चक्र

(4) निषेचन एवं भ्रूण विकास

(5) प्रसव

इकाई पांच के पशु बाँझपन एवं निवारण को 5 उपशीर्षकों में बांटा गया है।

(1) बाँझपन एवं अनुर्वरता की दशायें

(2) बाँझपन के कारण

(3) निदान

(4) उपचार

(5) रोकथाम

इकाई छः के कृत्रिम गर्भाधान को 4 उपशीर्षकों में बाँटा गया है।

(1) कृत्रिम गर्भाधान की परिभाषा एवं विकास

(2) कृत्रिम गर्भाधान के लाभ, हानि एवं सीमायें

(3) कृत्रिम गर्भाधान की प्रविधि

(4) यन्त्रों का जीवाणुहनन

इकाई 4: पशुजनन एवं प्रसव के समय प्रबंध

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना (Introduction)

4.2 उद्देश्य (Objectives)

4.3. जनन (Reproduction)

- 4.3.1 जनन अंग (Repoductive organs)
- 4.3.1.1 नर जननेंद्रिय के भाग एवं कार्य (Male reproductive organs and their functions)
- 4.3.1.2 मादा जननेंद्रिय के भाग एवं कार्य (Female reproductive organs and their Functions)
- 4.3.2 मद चक्र (Estrous Cycle)
- 4.3.3 निषेचन एवं भ्रूण का विकास (Fertilization and Embryo Development)
- 4.3.4 प्रसव (Parturition)
  - 4.3.4.1 प्रसव के समय प्रबंध (Care at the time of Parturition)
  - 4.3.4.2 प्रसव के बाद प्रबंध (Care After parturition)

4.4 सारांश

4.5 उपयोगी पुस्तकें

4.6 संबंधित प्रश्न

4.1 प्रस्तावना (Introduction)

जनन (Reproduction) जीवों की एक जैविक क्रिया है जिसमें नर व मादा के सहवास के फलस्वरूप नये जीव क उत्पत्ति होती है। नर के शुक्राणु (sperm) तथा मादा के अण्डाणु (Ovum) के मिलने पर निषेचन होता है जिससे भ्रूण बनता है जो पशु के गर्भाशय में एक निश्चित समय तक रहकर माँ से पोषण प्राप्त कर धीरे-धीरे विकसित होकर नये जीव के रूप में जन्म लेता है। यह एक आवश्यक एवं महत्वपूर्ण क्रिया है जिससे प्रकृति में उस जीव की वंशपरम्परा चलती है तथा जीवों का आस्तित्व कायम रहता है।

नर तथा मादा के कौन-कौन से अंग जनन में भाग लेते हैं तथा उनका क्या-क्या कार्य है? हम इस इकाई में अध्ययन करेंगे। प्रायः प्रसव के समय कुछ समस्याएं आती रहती है जिसके समय से जागरूक रहकर दूर किया जा सकता है। पोषण एवं प्रबंधन के द्वारा स्वस्थ नवजात पैदा किया जा सकता है।

4.2 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई का उद्देश्य पशु-पालकों को निम्नलिखित विषयों से संबंधित विस्तृत जानकारी उपलब्ध करना है-

1- गाय के नर व मादा जनन अंग।

2- जनन अंगो के कार्य।

3- सही समय पर पशु के ऋतुमयी (heat) होने की जानकारी।

4- सही समय पर गर्भाधान (Insemination)।

5- प्रसव के समय आने वाली कठिनाईयां।

6- प्रसव के बाद देखभाल की आवश्यकता की जानकारी।

4.3 जनन (Reproduction)

जनन जीवधारियों की वह जैविक क्रिया है जिससे वे अपने जैसी ही जीवधारी पैदा करते हैं। नर तथा मादा के संयोग से नये जीन की उत्पत्ति होती है। नर के शुक्राणु तथा मादा के अण्डाणु के मिलने से भ्रूण बनता है जो गर्भाशयी विकास के बाद नये जीव के रूप में जन्म लेता है। शुक्राणु तथा अण्डाणु की उत्पत्ति क्रमशः नर तथा मादा जननेंद्रिय से संबंधित हैं।

अतः यहाँ पर इन्ही अंगों का संक्षिप्त वर्णन निम्नलिखित है-

1. नर जननेंद्रिय के भाग और उनके कार्य (Parts of Male of Reproductive organs and their functions) नर जनन अंग निम्नलिखित है-

1. अण्डकोष (Testes) - प्राथमिक आवश्यक अंग - प्राथमिक आवश्यक अंग
2. एपिडिडिमिस (Epididymis)] द्वितीयक आवश्यक अंग
3. शुक्रवाहिनी (Vas deferens)]
4. शुक्राशय (Seminal vesicle)] सहायक अंग (Accssory organs)
5. प्रोस्टेट ग्रंथि (Prostate)]
6. कंद मूत्रिपथ ग्रंथिया (Bulbo-Urethal or cowper's glands)]
7. मूत्रमार्ग (Urethra)] संगोय अंग (Copulation Organs)
8. लिंग (Penis)]

(1) अण्डकोष :- कुछ पशु जैसे हाथी को छोड़कर अधिकतर पशुओं में यह शरीर के बाहर वृषणकोष (Scrotum) में पिछली टांगों की जांघो के मध्य स्थित रहते हैं। यह थैली काफी ढीली रहती है अतः अण्डकोष इसमें ऊपर-नीचे चल सकते हैं। बहुधा बाई ओर का अण्डकोष, दाई ओर से अण्डकोष से छोड़ा बड़ा होता है। यह शुक्राणुजनक नलिकाओं (Semeniferous tubules) के बने होते हैं। इनका मुख्यकार्य शुक्राणु पैदा करना तथा टेस्टोस्टरोन हार्मोन्स निकालना है। शुक्राणु, शुक्राणुजनक नलिकाओं (Seminiferous tubules) में उपस्थित शुक्राणुजनक कोशिका (Spermatogonia) से पैदा होते हैं और इस क्रिया को शुक्राणु उत्पादन (spermatogenesis) कहते हैं। सेमिनीफेरस नलिकाओं के जाल के मध्य अंतराल कोशिका या लेडिंग (Interstitial cells or cells of leydig) कहते हैं। यही कोशिका हार्मोन बनाते हैं। सेमिनीफेरस नलिकाओं की सर्टीली कोशिकाओं (Sertoli cells) शुक्राणुओं को परिपक्व करने में सहायक होती है।

वृषणकोष (scrotum) खाल की बनी थैली अण्डकोष पर चढ़ा रहता है। इसका मुख्यकार्य अण्डकोषों क बाहरी धक्कों से बचाना तथा गर्मी व जाड़ों में उनके कार्य हेतु उचित तापक्रम प्रदान करना है। इसलिए जाड़ों के दिनों में तापक्रम गिरने से यह आवरण सिकुड़ जाता है। तथा गर्मियों में तापक्रम बढ़ने से फैल जाता है। दोनों अण्डकोष के बीचो-बीच पूरी लम्बाई में एक गर्त सा प्रतीत होता है। इससे दोनों अण्डकोष एक दूसरे से अलग - अलग पहचाने जाते हैं।

(2) एपिडिडिमिस (Eididymis) :- यह एक कुण्डली के आकार की टेढ़ी-मेढ़ी बनी हुई लम्बी नली है जो संयोजी ऊत्तक (Connective tissue) अपवाही वाहिनिका (efferent duct) तथा एक सीरस झिल्ली द्वारा अण्डकोष के अंदर की ओर मुड़ी रहती है। सेमिनीफेरस नलिकायें अण्डकोष के इसी किनारे पर आपस में जाकर मिलकर एक भाग रेटीटेस्टिस (Retestes) का निर्माण करती है। यहाँ से छोटी-छोटी नलिकायें निकलकर, शुक्रनलिका बनाती है। जो आगे चलकर एपिडिडिमिस में खुलती है। इस प्रकार अण्डकोष से लाये हुए शुक्राणु यहाँ पर एकत्र होते हैं तथा यहाँ भण्डारित होकर परिपक्व होते हैं। एपिडिडिमिस के सिर, धड़ तथा पूंछ नामक तीन भाग होते हैं। शुक्रनलिका वाला भाग, जिसमें एक दर्जन से भी अधिक छोटी-छोटी नलिकायें है, सिर (Head) कहलाता है। यह सब नलिकायें आपस में मिलकर आगे बढ़कर एक बड़ी नलिका को जन्म देती है। इस के मध्य भाग को धड़ (Body) कहते हैं। आगे बढ़कर यह नलिका समाप्त होने लगती है जिसे पूंछ (Tail) कहते हैं। पूंछ आगे शुक्रवाहिनी से मिल जाती है। एपिडिडिमिस के धड़ (Body) तथा पूंछ (Tail) वाले भाग में ही कुछ समय तक शुक्राणु भण्डारित होकर परिपक्व होते हैं। इसका दूसरा कार्य वीर्य को पतला करने के लिए द्रव स्रावित करना है। शुक्राणुओं में गति तथा संसेचन का गुण यह विकसित होता है।

(3) शुक्रवाहिनी (Vas Deferens) :- एपिडिडिमिस की पूंछ से लेकर मूत्र-मार्ग तक वीर्य को ले जाने वाली यह दो लम्बी नलिकायें है। दोनों ओर की नलिकायें मूत्राशय की ग्रीवा पर बिल्कुल ही एक दूसरे के निकट आकर ऊपर की ओर शुक्राशय के सम्पर्क में आकर

कुछ मोटी हो जाती है और इस प्रकार इनके इस फूले हुए आकार को शुक्रवाहिनी कलशिका (Ampulae of the vas deferens) कहते हैं। आगे चलकर ये नलिकायें प्रोस्टेट ग्रंथि के नीचे से निकलकर शुक्र प्रसेचिनी वाहिनी (ejaculatory duct) द्वारा मूत्रमार्ग (Urethra) में खुलती है। इसका मुख्यकार्य एपिडिडिमिस में भण्डारित वीर्य को मूत्र-मार्ग तक पहुँचाना है। इसके विपरीत इनकी कलशिका (Ampullae) में, वीर्य के बाहर निकलने से पूर्व, शुक्राणु भण्डारित रहते हैं।

(4) शुक्राशय (Seminal Vesicle) :- यह नहर जननेद्रिय के सहायक उपांगो में सबसे बड़ी ग्रंथियां हैं, जो सांड़ में लगभग 7-8 सेमी0 लम्बी तथा 3सेमी0 चौड़ी होती है। वह ग्रंथियाँ शुक्रवाहिनी के मूत्रमार्ग में खुलने वाले सिरे के एक ओर स्थित रहकर एक नलिका द्वारा मूत्रमार्ग में संबंधित रहती है। इनसे एक तरल पदार्थ निकलकर वीर्य को पतला करता है। देखने में यह द्रव रंगहीन चिपचिपा पदार्थ है जिसमें प्रोटीन, सिद्रिक अम्ल, पोटैशियम आयन तथा फ्रुक्टोन मौजूद रहता है। ये तत्व शुक्राणुओं को आवश्यक पोषण तथा शक्ति प्रदान करते हैं। मांसाहारी पशुओं में शुक्राशय अनुपस्थिति रहता है।

(5) शुक्र प्रसेचिनी वाहिनी (Ejaculatoy Duct) :- शुक्राशय के अग्रभाग तथा शुक्रवाहिनी के पारस्परिक संयोग से शुक्र प्रसेचिनी बनती है। यह मूत्रमार्ग (Urethra) में खुलती है। इसका कार्य इस तक लाये गये वीर्य को मूत्रमार्ग में पहुँचाना है।

(6) प्रोस्टेट (Prostate) :- यह एक ग्रंथि के रूप में मूत्राशय की ग्रीवा के ठीक ऊपर उस स्थान पर स्थित रहता है जहाँ पर मूत्रमार्ग प्रारम्भ होता है। इस ग्रंथि से दूधिया रंग का एक क्षारीय तरल पदार्थ निकलकर वीर्य में मिलता है जो उसकी विशेष प्रकार की गंध तथा योनि की अम्लीयता को दूर करने के लिए उत्तरदायी है। इस द्रव में प्रोटीनृसंलापी एंजाइम, बीटा-ग्लूकरोनाइडेस, सिट्रिकअम्ल तथा एसिड फास्फेट मौजूद रहता है।

(7) केन्द्र मूत्रि-पथ ग्रंथिया (Bulbo-or cowper's glands urethral glands) :- प्रोस्टेट के पीछे तथा मूत्र-मार्ग के दोनों ओर स्थित रहने वाली छोटी-छोटी गोलाकार ग्रंथी होती है। साँड़ में यह बहुत ही छोटी होकर पेशी ऊतक से ढकी रहती है। इनका मुख्यकार्य एक क्षारीय तथा लसीला द्रव निकालकर वीर्य पहुँचने से पहले मूत्रमार्ग को स्वच्छ एवं चिकना करना तथा वहाँ की रासायनिक प्रक्रिया (Chemical reaction) को नियंत्रित करना है।

(8) मूत्र-मार्ग :- मूत्राशय से लिंग के शिश्न तक आने वाली यह एक लम्बी नली है। जो मूत्र तथा वीर्य को शरीर से बाहर निकलने के लिए मार्ग प्रदान करती है। मूत्र-मार्ग के प्रोस्टेटिक भाग की सतह पर एक छोटा सा उठा हुआ भाग होता है। जिसे क्रिस्टा यूरेथ्रा (crista Urethra) या 'कैपट गेलीनेजिनिस' कहते हैं। जिसमें सतर्क या खड़े होने वाले तंतु होते हैं। जो सहवास के समय निकले हुए वीर्य को मूत्राशय में वापस जाने से रोकते हैं।

(9) लिंग (penis) :- यह संयोग स्थापित (Copulation) करने वाला नर जनन

अंग है। यह हर्षण ऊतक का बना हुआ मसीला भाग है जो नर जननेंद्रिय में सहवास का विशेष अंग है। इसका मुख्य कार्य शुक्राणुओं को मादा जननेंद्रिय में पहुँचाना है। इसके अतिरिक्त यह मूत्र को बाहर निकालने में सहायक होता है। इस अंग की रचना विभिन्न पशुओं में भिन्न-भिन्न होती है। गौवंशीय साँड़ में इसका मुख्य भाग अंग्रेजी की 'S' अक्षर के समान होता है जिसे अवग्रहाकार आकोचनी (Sigmoid Flexture)कहते हैं। लिंग का अंग्रभाग शिश्न-मुण्ड (Glans-Penis) कहलाता है। संभोग काल में लिंग में बहुत तेजी से रक्त संचार होता है। पूरा लिंग बाहर से त्वचा द्वारा ढका रहता है जो बाहरी धक्को तथा गंदगी आदि से इसकी रक्षा करता है। इसका खुला हुआ द्वार जहाँ से लिंग बाहर निकलता है, मुतान (Sheath) कहलाता है। इसके चारों ओर छोटे-छोटे बाल भी होते हैं।

गाय के मादा जनन अंग एंव उसके कार्य

(Reproductive Organs of Cow and their functios)

गाय के मादा जनन अंग निम्नलिखित है-

अण्डाशय (Ovaries)

(i) प्राथमिक अंग (Primary Sex Organs)

(ii) द्वितीय और सहायक अंग (Accessory organs)

(1) अंडवाहिनी या फैलोपियन नली (Oviduct of Fallopain Tube)

(2) गर्भाशय (Uterus)

(3) योनि (Vagina)

(4) भग (Vulva)

गाय के मादा जनन अंग

(Female Reproductive organs of cow)

अण्डाशय (Ovary) :- गाय में 2.5 - 4 सेमी0 व्यास की अण्डाशय दोनों ओर गर्भाशय के पृथु स्नायु (Board Ligament) जिसे मेसोवरियम भी कहते हैं, के द्वारा उदर या श्रोणि-गुहा (Abdominal or Pelvic cavity) में लटकी रहती है। योनि से लगभग 40-45 सेमी0 दूर गाय में अंदर की ओर स्थित रहती है। गाय के गुदा मार्ग में हाथ डालकर इनको महसूस किया जा सकता है। इस प्रकार टटोलने में अण्डाशय के ऊपर एक मटर के दाने के बराबर उठी हुई छोटी गाँठ सी प्रतीत होती है। इसे कार्पस लूटियम कहते हैं।

ओवरी का मुख्यकार्य अण्डाणु पैदा करना होता है तथा मादा हारमोन भी स्रावित करती है जो कि जननक्रिया तथा अयन के विकास से संबंधित है।

2. अण्डवाहिनी (Oviduct or Fallopain tube) :- यह प्रत्येक ओवरी से गर्भाशय भृगों (Uterine horns) तक जाने वाली टेढ़ी-मेढ़ी पतली नलिकायें हैं जो ओवरी का

गर्भाशय से सम्पर्क स्थापित करती है। गाय में इनकी लम्बाई 25-39 सेमी0 तक होती है तथा यह मेसोवरियम लिगामेन्ट पर चिपकी हुई लहरियादार आकार में गर्भाशय से जाकर मिल जाती है। इनका ओवरी की ओर वाला सिरा एक कीप के आकार का चौड़ा होता है, जिसे इनफण्डीबुलम कहते हैं। इसका एफीथीलियम स्तम्भाकार रोमाभी (Ciliated columnar) होता है। इसमें उपस्थिति रोमाभ (Cilia) अण्डाणु (Ovum) को गर्भाशय की ओर पहुँचाने में सहायक होते हैं। डिम्बवाहिनी के इनफण्डीबुलम, ऐम्पुला तथा स्थमस नामक तीन भाग होते हैं। इनमें उपस्थित स्रावक कोशिकाएं एक रस निकालती है जो दोनों ओर बहने की क्षमता रखता है। गर्भाशयी श्रृंग में उपस्थिति शुक्राणु जब इस द्रव के सम्पर्क में आते हैं तो उनकी संसेचनक्षमता में वृद्धि होती है। इस क्रिया को शुक्राणु धारित्व (Capacitation of sperms) कहते हैं।

2. गर्भाशय (Uterus) :- यह एक बहुत ही लचीला मांस का खोखला भाग है जो गर्भकाल में भ्रूण को सुरक्षित रखकर एवं उसकी वृद्धि करके, एक जीव के रूप में संसार में जन्म लेता है। इसको दो श्रृंग (horns) शरीर (Body) तथा ग्रीवा (Neck) नामक तीन भाग होते हैं। गर्भाशियी श्रृंग (Uterine horns) टेढ़ी-मेढ़ी आकृति के नीचे की ओर चौड़े होकर गर्भाशय के शरीर से जुड़े रहते हैं तथा आगे की ओर अण्डवाहिनी से जा मिलते हैं। गाय के इन श्रृंगों की लम्बाई लगभग 40 सेमी0 तक होती है। गर्भाशय का शरीर वाला भाग गाय में लगभग 4 सेमी0 होती है। गर्भाशयी ग्रीवा एक छेददार रबर की कार्क की आकार का बना हुआ 8-10 सेमी0 लम्बा तथा 2.5 सेमी व्यास का मसीला भाग है। इसमें 15-25 लम्बे फोल्ड तथा 4 गोल फोल्ड होते हैं। इसका पिछला भाग योनि में बढ़ा हुआ नुकीला-सा प्रतीत होता है। जो कड़े छल्लेदार मांस पर्तों का बना होता है। यह छल्ला लगभग हर समय ग्रीवा के मुख को बंद किये रहता है जिससे कोई भी वस्तु गर्भाशय में सरलता से प्रवेश नहीं कर पाती है। मादा के ऋतुमयी होने पर यह मसीला छल्ला कुछ ढीला पड़ जाता है। अतः इस समय पर लिंग का वीर्य सरलता से इस मुख द्वारा प्रवेश पाकर आगे गर्भाशय में भली-भांति जा सकता है। गर्भाकाल में गर्भाशय ग्रीवा का मुख श्लेष्मिक डाट (mucous plug) से बिल्कुल ही बन्द हो जाता है।

गर्भाशयी श्रृंग (Uterine horns) :- में भ्रूण पलता है तथा गर्भकाल पूर्ण होने पर इसके शरीर एवं ग्रीवा के अंदर का खोखला भाग बच्चे को बाहर निकालने के लिए मार्ग देता है। श्रृंगों की भीतरी दिवालों पर कुछ उठे हुए गोल-गोल मसीले भाग होते हैं जिन्हें काटीलीडन कहते हैं (Cotyledons)कहते हैं। गाय में इनकी संख्या 100 के लगभग होती है। इन्हीं से भ्रूण जुड़ा रहता है। प्रत्येक गर्भाशयी श्रृंग में 35-60 काटीलीडन मौजूद हो सकते हैं। गर्भाशय की मांसपेशी लचीली होने के कारण प्रसवकाल में संकोचन एवं विमोचन की क्रिया करके बच्चे को बाहर निकालने में सहायक होती है तथा प्रसव के बाद कुछ दी दिनों में सिकुड़कर अपनी पूर्ण अवस्था ग्रहण कर लेती है।

3. योनि (Vagina) :- गर्भाशय की ग्रीवा से लेकर भग तक का भाग योनि कहलाता है। गाय में इसकी लम्बाई 25-35 सेमी0 तक होती है। इसी के अंदर मूत्र नली खुलती है एवं प्रजनन नली प्रारम्भ होती है। ओसरों में प्रजनन नली का मुख एक पतले छोटे मसीले पर्त से बंद रहता है जिसे हाइमन (Hymen) कहते हैं। जो अक्सर प्रथम सहवास के समय टूट जाती

है। गर्भाशय के अन्य भागों की भांति योनी भी बहुत लचीली मांस पेशी की बनी होती है जो उसी तरह सिकुड़ एवं फैल सकती है। यह मादा में सहवास का विशेष अंग है। अतः सहवास के समय नर का लिंग ग्रहण करना इसका प्रमुख कार्य है। इसका दूसरा कार्य ब्यात के समय बच्चे के लिए मार्ग प्रदान करना है। इसके अतिरिक्त मूत्र भी यहीं से होकर बाहर निकलता है।

4. भग (Vulva) :- यह मादा जननेंद्रिय का अंतिम भाग है जिसके दो भग-ओष्ठ (Lips of vulva) गुदा (anus) के नीचे लटके दिखायी देते हैं। इसका व्यास योनि के व्यास से कुछ बड़ा होता है। भग की दीवालों पर कुछ ग्रंथियाँ स्थित रहती है जो सहवास के समय मादा को उत्तेजित करने में सहायक होती है। इसकी निचली सहतों पर मूत्र जाने के लिए मार्ग होता है। नर लिंग से समजात भग-शिश्न (Clitoris) नामक एक छोटा सा उत्तेजक अंग भी भग के पिछले भाग में स्थित रहता है। सहवास काल में नर का लिंग इसी भग-शिश्न से रगड़ कर मादा में अधिक काम-वासना जाग्रत करता है। भग ओंष्ठों पर बाहर की ओर कुछ छोटे-छोटे बाल भी होते हैं। बाहर दोनों भग के ओष्ठ एक दूसरे से चिपके रहते हैं जिससे कि बाहरी दूषित पदार्थ योनि में प्रवेश नहीं कर पाते हैं। मादा के ऋतुमयी होने पर भग के निचले कोने से लसदार स्राव निकलता है जो नर लिंग प्रवेश हेतु जननेंद्रिय मार्ग को चिकना बनाता है। शेष समय में यह भग सूखी सी दिखायी पड़ती है। लचीली होने के कारण ब्यांत के समय फैलकर यह बच्चे को बाहर निकालने के लिए मार्ग प्रदान करती है। इसके अतिरिक्त प्रसव के जेर (After birth Placnenta) भी यहीं से होकर बाहर निकलती है।

3.2 मद चक्र (Estrous Cycle)

प्रजनन मौसम में मादा पशु गर्मी (heat) दिखाती है। यह मद (heat) एक निश्चित के अंतराल पर तब तक दिखायी देती है जब तक की मादा गर्भवती न हो जाय।

मदचक्र (Heat Cycle) की 4 अवस्थाएँ होती है-

1. प्रोइसट्रम (Proestrum) 2. ओइस्ट्रम (Oestrum)

3. मेटाइस्ट्रम (Metoestrum) 4. डाइस्ट्रम (Dioestrum)

1. प्रोइसट्रम (Proestrum):- इसमें गाय गर्मी में आती है। इसमें ग्रैफीयन फालिविल (graafian follcle) बढ़ती है। योनि की एपिथिलीयल दिवालों की मोटाई बढ़ती है। योनि स्राव दिखायी देता है।

2. ओस्ट्रम (Oestrum):- यह अण्डाणु (Ova) के उत्पन्न होने अवस्था है। (Ovulation from graafian folied) इस अवस्था में भग कुछ फूला सा रहता है, लाल रहता है। योनि स्राव दिखायी देता है। गाय में यह अवस्था 12-24 घंटे, भेड़ में 1-2 दिन तथा घोड़ी में 4-5 दिन और सुअर में 2-3 दिन होती है।

3. मेटाइस्ट्रम (Metaestrum):- इसमें प्रजनन अंग समान्य अवस्था में आने लगते हैं। इस अवस्था में ग्रैफियन फालिकिल के वह स्थान जहाँ से अण्डाणु (Ova) निकलता है वहाँ कार्पस ल्यूटियम (Corpus luteum-C.L.) बन जाता है। यह इंडोक्राइन ग्रंथि (endocrine

gland) है जिससे प्रोजेस्टरान हार्मोन निकलता है।

4. डाइस्ट्रम (Dioestrum):- यह मदचक्र की लम्बी अवस्था है। इसमें C.L. पूर्णतः निमिरूत हो जाता है और यदि गर्भावस्था होती है तो यह C.L. पूरी गर्भावस्था तक रहती है। यदि गर्भ नहीं रहता है तो यह C.L. (Corpus luteum) समाप्त हो जाता है तथा इसी के साथ मदचक्र (heat cycle) का एक चक्र पूरा हो जाता है तथा दूसरा चक्र फिर शुरू होने की स्थित हो जाता है।

विभिन्न श्रेणी के मादा पशुओं में जनन की विभिन्न अवस्था एवं क्रियाओं को निम्न प्रकार प्रस्तुत किया गया है।

पशु वर्ग	मदकाल (heat period)	मदचक्र (heat cycle)	अण्डाणु विसर्जन की अवधि (Ovulation Time)	गर्भावस्था (Gestation
1. गाय (Cow)	16 घंटे (12-24 घंटे)	21 दिन	ऋतुमयी (heat) शुरु होने के 12 घंटे बाद	281+2 दिन
2. भैंस (Buffalo)	16 घंटे (12-16 घंटे)	21 दिन	ऋतुमयी होने के 7 घंटे पश्चात्	310 दिन
3. बकरी (Doe)	38 घंटे	19 दिन	मद समाप्त होने के 12 घंटे पहले	145 दिन
4. भेड़ (Ewe)	30 घंटे	16 दिन	मद सम्पात होने के 20 घंटे पहले	150 दिन
5. मादा सुअर (Sow)	2-3 दिन	21 दिन	मदकाल के मध्य में	114 दिन
6. घोड़ी (Mare)	4-7 दिन	21 दिन	मदकाल के समाप्त होने से 1 दिन पहले	336 दिन
7. कुतिया (Bitch)	7 दिन	साल में दो बार	मदकाल के प्रारम्भ से 2-3 दिन बाद	60 दिन

3.3 निषेचन एवं भ्रूण का विकास (Fertilization and Development of Embryo) :-

गाय का अण्डाणु (Ovum) केवल एक शुक्राणु द्वारा ही संसेचित (Fertilize) होता है और तुरंत ही श्रेणियों में विभाजित होकर उसकी वृद्धि प्रारम्भ हो जाती है। एक संसेचित अण्डाणु दो, चार, आठ इत्यादि जैसी कोशिकाओं में विभाजित होता है। तत्पश्चात् इसकी वृद्धि होकर एक प्रौढ़ शरीर का विकास होता है।

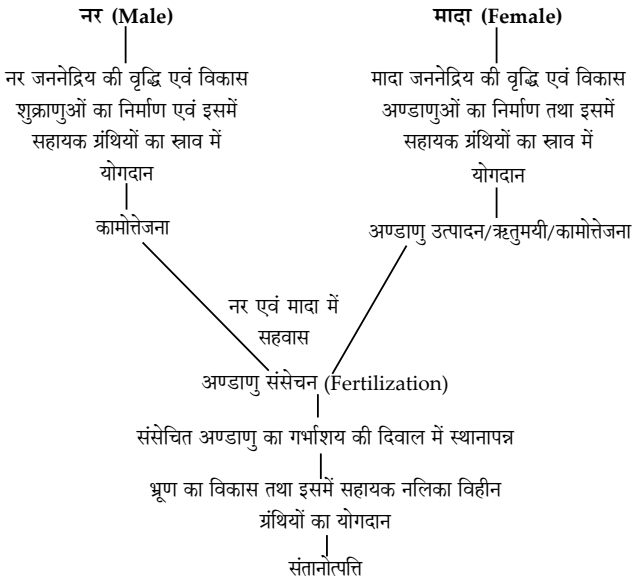

गाय का जननतंत्र एक संयुक्त एण्डोक्राइन प्रणाली द्वारा नियंत्रित होता है। जनन अंगों के कार्य जैसे ऋतुमयी होना, गर्भित होना, गर्भकाल, प्रसव तथा दूध देना आदि, पिट्यूरी, ओवैरियन फालिकिल, कार्पस ल्यूटियम, गर्भनाल (placenta) के हारमोंस द्वारा नियंत्रित एवं समन्वित होते हैं। जनन की सम्पूर्ण क्रिया का ऊपर वर्णन किया गया है।

संसेचित अण्डाणु जाइगोट (Zygote) कहलाता है। जाइगोट का पहला विभाजन 24 घंटे में पूरा हो जाता है। भ्रुणीय विकास की कई अवस्थाएँ होती है और इनकी अवधि मादा के गर्भकाल की अवधि पर निर्भर करती है। गाय में 4 दिन में जाइगोट 8 से 16 कोशिकाओं में विबाजित हो जाता है। इसके बाद कोशिका विभाजन द्वारा विशेष प्रकार के कोशिकायें बनकर भ्रणीय झिल्लियों का विकास करते हैं जो विकास काल में बच्चे या भ्रूण को ढकी रहती है। ऐसी तीन झिल्लियाँ होती है- (1) सबसे भीतरी एम्निपान (2) बीच वाली एलन्टोइस तथा (3) बाहरी झिल्ली कोरिपान कहलाती है। एम्निपान तथा एलन्टोइस के बीच एक द्रव भरा रहकर भ्रूण की बाहरी धक्कों से रक्षा करता है। एलंटोकोरिपाय मिलकर गर्भाशय की दिवाल से बच्चे को जोड़ते हैं। गाय में अण्डाणु संसेचन के एक माह बाद यह क्रिया (Implantation) प्रारम्भ होकर तीसरे माह में पूरी हो जाती है। अब इसी माध्यम से माँ तथा विकासकालीन भ्रूण में तत्वों का आदान - प्रदान शुरू हो जाता है। इस माध्यम को प्लेसेंटा कहते हैं। प्रारम्भ में भ्रूण का विकास बहुत धीरे-धीरे होता है। गाय का भ्रूण 45 दिन में लगभग 85 ग्राम का, 90 दिन में 1 किलो तथा 220 दिन में 10 किग्रा का हो जाता है।

3.4 प्रसव (Parturition) :-

यह वह प्रक्रिया है जिसमें बच्चा मादा के गर्भाशय से निकलकर बाहर आता है अर्थात् जन्म लेता है। गोवंश में इसे कांविंग (Calving) कहते हैं।

4.3.4.1 प्रसव के समय प्रबंध (Care at parturition) :- प्रसव के समय कुछ बातों का ध्यान रखते हैं जिससे बच्चा सामान्य रूप से पैदा हो तथा कोई समस्या न आये जिससे प्रसूती गाय और बच्चा की मौत से सुरक्षित रहे।

(i) गाय को समूह से अलग करना

(ii) प्रसव करने को जीवाणु रहित करना (Disinfection of calving box)- इसे लाइसोल या फिनाइल के 2% घोल से जीवाणु रहित कर लेते हैं। बिछावन सूखा, साफ, मुलायम जैसे गेहूँ का भूसा, धान का पुआल आदि की 4-6 इंच मोटी सतह विछाना चाहिए।

देखभाल- साधारणतया सामान्य स्थिति में प्रसवकाल में किसी भी मदद की आश्यकता नहीं है। इसके अतिरिक्त कभी-कभी डिस्टोकिया आदि की समस्या उत्पन्न हो जाती है जिससे उस समय सहायता की जरूरत पड़ती है तो एक सहायक को रखना चाहिये तथा आवश्यकता पड़ने पर पशु चिकित्सक की सहायता लेना चाहिए।

(iii) दुग्ध ज्वर से बचाव (Gaurding against Milk Fever) :-

(a) यह दुग्ध ज्वर अधिकतर ज्यादा दूध देने वाली गायों में होता है।

(b) पहलीबार बच्चा देने वाली गायों (first calver heigers) में कभी-कभी यदा-कदा हो जाता है।

(c) खनिज तत्वों की कमी को पूरा करने के लिए तथा दुग्ध ज्वर से बचाव के लिए गाय भैंस को आहार के साथ बोनमील (हड्डी का चूर्ण) देना चाहिए ताकि कैलसियम की कमी की पूर्ति हो सके।

(d) बच्चा देने से पूर्व गाय से दूध नहीं निकालना चाहिए (Prenating) चूंकि अयन नाड़ी-तन्तुओं में तथा जनन अंगों में घनिष्ठ संबंध होता है। जिससे बच्चा देने की प्रक्रिया में कई घंटों की देरी हो जाती है।

(e) विटामिन डी की मात्रा आहार में बढ़ा दी जाय जिससे कैलसियम व फास्फोरस का शोषण बढ़ जायें।

(iv) प्रसव प्रक्रिया (Parturition Process) :-

(A) प्राथमिक अवस्था (Parturition Process) :- इसके लक्षण निम्न प्रकार है-

(1) अयन का आकार बढ़ जाता है और वह लटका हुआ, फैला रहता है।

(2) अयन के खीस भरा रहने के कारण सख्त हो जाता है।

(3) थनों में दूध भरा रहता है तथा वे सीधे एंव कुछ विकसित प्रतीत होते हैं।

(4) अयन एवं थन चिकने एवं चमकीले दिखायी देते हैं।

(5) पूंछ के दोनों ओर की मांसपेशियां ढीली पड़ जाती है तथा पुट्ठे पर गड्ढे बन जाते हैं।

(6) गाय एकातवास पसंद करती है।

(7) गाय बेचैन प्रतीत होती है।

(8) भग (Vulva) से सफेद सा म्यूकस आता दिखता है।

(9) भग पर सूजन होने से ढीली व आकार में बड़ी प्रतीत होती है।

(B) ग्रीवा की विस्तारक स्थिति (Dilation phase of cervix) :- इसके लक्षण निम्नलिखित है-

(1) प्रसव पीड़ा शुरू हो जाती है।

(2) गाय बार-बार उठती-बैठती, लेटती है और बार-बार पेशाब करती है।

(3) नाड़ी की गति तथा श्वास की गति थोड़ी बढ़ जाती है।

(C) प्रसव के समय बच्चे का बाहर आना (Phase of expulsion of Foetus) :- इसमें

(1) पानी के समान द्रव (Aminotic fluid) की थैली दिखायी देती है। जो धीरे-धीरे बाहर आती है।

(2) यह थैली फट जाती है और पूरा द्रव बाहर गिर जाता है।

(3) अगले पैर के खुर दिखायी देते हैं तथा इन पैरों के घुटने ऊपर की ओर रहते हैं जिनके बीच बच्चे का मुँह रखा रहता है।

(D) सामान्य प्रसव (Normal Calving) :- एवं बच्चे की सामान्य प्रस्तुति (Normal presentation of calf):- बच्चे के अगले पैरों और घुटनों के बीच सिर रखा रहता है। फिर सामान्य रूप से शरीर बाहर आता है तथा आखिर में बच्चे के पिछले पैर। इस प्रकार के प्रदर्शन या उपस्थापन में गाय को किसी मदद की आवश्यकता नहीं होती है।

(E) असामान्य प्रस्तुति (Abnormal Presentation) :- स्थिति (Position) मुद्रा (Posture) :-

(1) किसी भी प्रकार की बच्चे की स्थिति या मुद्रा सामान्य से भिन्न है तो ऐसी स्थिति में प्रसव पीड़ा अधिक होती है। इसे डिस्टोकिया कहते हैं। स्थिति के अनुसार ही पशु चिकित्सक की आवश्यकता बढ़ जाती है।

(2) बिना अनुभवी व्यक्ति को इस कार्य के लिए प्रयोग नहीं करना चाहिए।

(F) प्रसवकाल (Parturition Period) :- यदि सामान्य प्रसव प्रक्रिया है तो प्रसवकाल लगभग 3-4 घंटे में पूरा हो जाता है। परन्तु प्रथम ब्याने वाली बछिया (First Calver heifer) में 4-6 घंटे तक का होता है।

(V) प्रसव के उपरांत जेर डालना (Expulsion of placenta after birth) :- प्रसव के बाद लगभग 5-6 घंटे के अंदर गाय जेर डाल देती है। यह गाय की प्रसव की सामान्य क्रिया और गाय की दशा पर निर्भर करता है। अन्यथा यह समय 8 घंटे तक भी हो सकता है।

जेर न डालना (Retention of placenta) :- यदि पशु 8 घंटे तक जेर न डाले तो यह स्थिति जेर के रुकने की हो सकती है जिसे जेर अवरोधन या अवधारणा कहते हैं।

जेर अवधारणा के कारण (Causes of Retention of placenta) :-

1. पशु की अधिक आयु
2. पशु की स्वास्थ्य की खराब दशा।
3. गर्भाशय की मांसपेशियों का कमजोर पड़ना।
4. संक्रमण गर्भपात रोग अतिक्रमण
5. अन्य जीवाणु के अतिक्रमण से बीमार पशु
6. कमजोरों तथा अन्य कारण।

जेर समय से न गिरने या जेर अवधारणा के कुछ दुष्प्रभाव भी होता है जो निम्नलिखित है-

(1) गर्भाशय पर सूजन

(2) गर्भाशय के अंदर सड़न

(3) जहरीले पदार्थों का उत्पन्न होना

(4) भूख कम लगना

(5) बुखार

(6) अन्य समस्यायें।

उपचार (Treatment) :-

(1) गुड़-750 ग्रा0, अजवाइन-60 ग्राम, सौंठ-15 ग्रा0 मेथी-15 ग्राम इन्हें 1 ली0 पानी मिलाकर देना चाहिए।

(2) टिक्चर अरगोट - 25 ग्रा0, मैगसल्फ-200 ग्रा0, सौठ-30 ग्रा0 लगभग 1/2 ली पानी मिलाकर देना चाहिए। आवश्यकता पड़े तो इन्हें दोबारा दिया जा सकता है।

(3) आक्सीटोसिन हार्मोंस का इंजेक्शन दिया जा सकता है।

(4) यदि उपरोक्त उपचार कारगर नहीं होते हैं तो जेर को हाथ से (जो जीवाणु रहित से) निकाला जा सकता है।

(5) हाथ से जेर निकालने के बाद योनि को जीवाणु नाशक जैसे लूगाल घोल या पोटैशियम परमैंग्रेट के घोल से साफ करके फिर उसे टेट्रासाइक्लिन की टिकिया रखना चाहिए।

(IV). बच्चा देते समय अन्य देखभाल :-

(1) गाय को थोड़ा गुनगुना पानी पीने के लिए दिया जाये।

(2) गाय को प्रतिकूल वातावरणीय दशाओं, व ठंडी हवाओं से बचाया जाय।

(3) जेर डालने के बाद इसे गाय को खाने न दिया जाय।

(4) जेर को गड्ढे में दवा दिया जाय और खुले में न फेंके।

(5) गाय के पिछले भागों को थोड़े से गर्म पानी से धोकर साफ कर लेना चाहिए।

(6) गाय को पाचक शक्ति वर्धक आहार जैसे चोकर के साथ गुड़ मिलाकर दलिया बनाकर दिया जाना चाहिए।

4.3.4.2 ब्याने के बाद गाय की देखभाल (Care of cow after calving) :-

1. सामान्य देखरेख -

(1) गाय को खराब मौसम व ठंड से बचाया जाय।

(2) शेड के आस-पास छापा का प्रबंध होना चाहिए।

(3) गाय को स्वच्छ पानी, ताजा पीने को दिया जाना चाहिए।

(4) शीरा या गुड़ मिला गेहूँ का चोकर जो भी भीगा हुआ हो खाने के लिए दिया जाना चाहिए।

2. दोहन के समय गाय की देखभाल (Care of cow at Milking) :-

(1) ब्याने के पश्चात् जब गाय को दोहन शुरू करें तो ग्वाले को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि थनों के प्रवाह सभी रुकावटें दूर कर ली जाये ताकि सभी थनों से दूध सामान्य रूप से प्राप्त हो सके।

(2) यदि अयन एडिमा या अकड़न हो तो ग्वाले को तब तक चिंतित नहीं होना चाहिए जब तक दूध सामान्य रूप से प्राप्त होता रहे।

(3) गाय को दिन में कम से कम तीन बार दोहन किया जाय जब तक कि अयन की सूजन समाप्त न हो जाय।

3. खानपान सम्बन्धी देख-रेख (Care with regard to feeding) :-

(i) भोजन ताजा, हल्का दस्तावर पाचक, पौष्टिक, संतुष्टि प्रदान करने वाला व संतुलित हो। चारे रसीले, हरे, पाचक एवं द्विदलीय हो चाहिए।

(ii) गेहूँ का चोकर, जई असली की खली आदि।

(iii) ब्रान मेस (Bran mash) जिसमें 2 किग्रा0 चोकर + 1 किग्रा गुड़ मिलाकर ब्याने के कुछ समय तक दिया जाना चाहिए।

(iv) ब्याने के पश्चात् गाय के लिए आहार में पाच्य प्रोटीन (C.P. 16-18% प्रतिशत) तथा कुल पाच्यतत्व TDN होना चाहिए।

(v) दाने रातव में (concentrate) चना, चोकर और खली को समान मात्रा में

मिलाकर दिया जा सकता है।

(vi) खनिज मिश्रण में 50 ग्रा0 हड्डी का चूर्ण तथा 50 ग्रा0 नमक प्रतिनिद दिया जा सकता है। यदि आहार में सुपरमिन्डीफ या बूनओ मिल्क मिले तो अच्छा रहता है।

खानपान सम्बन्धी देख-रेख (Care with regard to feeding) :-

(1) भोजन ताजा, हल्का, दस्तावर, पाचक, पौष्टिक, संतुष्टि प्रदान करने वाला व संतुलित हो। चारे रसीले, हरे, पाचक एवं द्विदलीय होना चाहिए।

(2) ब्रान मेस (Bran mash) जिसमें 2 किग्रा0 चोकर + 1 किग्रा गुड़ मिलाकर ब्याने के कुछ समय तक दिया जाना चाहिए।

(3) ब्याने के पश्चात् गाय के लिए आहार में पाच्य प्रोटीन C.P. – 16-18 प्रतिशत) तथा कुल पाच्य तत्व TDN-70% होना चाहिए।

(4) दाने रावत (Concentrate) में होना चाहिए में चना, चोकर और खली को समान मात्रा में मिलाकर दिया जा सकता है।

(5) खनिज मिश्रण में 50 ग्रा0 हड्डी का चूर्ण तथा 40 ग्राम नमक मिला कर दें।

4.4 सारांश (Summary)

जनन प्राणियों की एक आवश्यक जैविक क्रिया है जिससे जीवों की वंश परम्परा चलती है। नर व मादा के सहवास में दौरान नर का शुक्राणु (sperm) तथा मादा का अण्डाणु (Ovum) के मिलने से निषेचन होता है। इससे जाइगोट बनता है। जाइगोट का 24 घंटे में पहला विभाजन होता है। भ्रूणीय विकास की कई अवस्थाएँ होती है। गाय में 4 दिन जाइगोट 8 से 16 कोशिकाओं में विभाजित हो जाता है। इसके बाद कोशिका विभाजन होकर भ्रूणीय झिल्लियों का विकास होता है। (1) एम्नियान (2) एलन्टोइस (3) कोरियान य एलंटोकोरियनान मिलकर गर्भाशय की दिवाल से बच्चे को जोड़ते हैं। इसी माध्यम से माँ तथा भ्रूण में पोषण का आदान प्रदान होता है इसे प्लेसेंटा कहते हैं। विभिन्न पशुओं में गर्भकाल होता है गाय में 280 दिन, भैंस में 310 दिन, भेड़-145 दिन, बकरी-150 दिन तथा सुअर 114 दिन।

4.5 उपयोगी पुस्तकें

1. एनिमल जेनेटिक्स एण्ड ब्रीडिंग प्रैक्टिसेज़ - डा0 जगदीश प्रसाद, इण्टर नेशनल बुक डिस्ट्रीब्यूटिंग कम्पनी, लखनऊ।

2. पशु पालन एवं पशु चिकित्सा विज्ञान - डा0 देव नारायन पाण्डेय।

3. टेक्सट बुक ऑफ एनिमल हस्बैन्ड्री - डा0 जी0 सी बनर्जी

4.6 संबंधित प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. पशु के नर जननांग का वर्णन करें ।
2. गाय के जननांग का वर्णन करें।
3. प्रसव किसे कहते हैं ? प्रसव के समय क्या प्रबंध किये जाने चाहिए?
4. प्रसवोंपरान्त प्रबन्धन का वर्णन करें।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. नर जननांग के विभिन्न भागों के कार्य बतायें।
2. मादा जननांग के विभिन्न भागों के कार्यों का वर्णन करें।
3. मद चक्र का वर्णन करें।
4. प्रसव प्रक्रिया का वर्णन करें।
5. जेर न डालने पर आप क्या उपचार करेंगे?
6. बच्चा देते समय पशु की क्या देख भाल की जाती है?
7. ब्याने के बाद पशु की देखभाल सम्बन्धी प्रमुख बाते बतायें।

इकाई 5: पशु बांझपन एवं निवारण

इकाई की रूपरेखा -

5.1 प्रस्तावना (Introduction)
5.2 उद्देश्य (Objectives)
5.3 पशुओं में बांझपन (Sterility and Infertility in Animals)
5.3.1 संबंधित शब्द (Terminology)
5.3.2 बांझपन एवं अनुर्वरता की दशाएं (Conditions of sterility and Infertility)
5.3.3 बांझपन के कारण (Causes of sterility)
5.3.4 निदान (Diagnosis)
5.3.5 उपचार (Treatment) एवं रोकथाम (Prevention)
5.3.6 रोकथाम (Prevention)
5.4 सारांश
5.5 उपयोगी पुस्तकें
5.6 संबंधित प्रश्न

5.1 प्रस्तावना (Introduction)

पशुओं में बांझपन से हमारे देश में न केवल पशुधन का उत्पादन प्रभावित होता है बल्कि पशुपालकों की मेहनत,समय बरबाद होती है साथ ही साथ अनुत्पादक पशु को रखने से पशुपालन व्यवसाय घाटे में रहता है। पशुओं में यह स्थिति पोषण का निम्नस्तर, प्रजनन व बीमारियों के द्वारा अथवा प्रबंधकीय कमियों या वातावरणीय कारकों के द्वारा संभव हो सकती है। हमारे देश में उत्तम प्रकार हरे-चारे-दाने की उपलब्धता कम पायी जाती है जिससे पशु का शारीरिक विकास अच्छा नहीं होने से उनमें अस्थायी तौर पर अनुर्वरता आ सकती है।

बांझपन से पशु अपने जीवनकाल में न तो सामान्य दूध उत्पादन कर पाते हैं न ही समय से बच्चा पैदा कर पाते हैं। इस प्रकार जीवन का अधिकांश भाग अनार्थिक हो जाता है। यह पशुपालक, समाज और अंततः देश की क्षति है।

बांझपन नर व मादा पशुओं की एक ऐसी अवस्था है जिसमें इसका मादा पशु गर्भधारण नहीं करता है। वह अवस्था प्रायःभैसों में अधिक पायी जाती है। रोगग्रसित मादायें कृत्रिम तथा प्राकृतिक रूप से उनके जननेंद्रिय में परीक्षित वीर्य डालने से भी गर्भ धारण नहीं करती है। नर पशुओं के वीर्य में यह गर्भ-धारण शक्ति को कम करती है तथा मादा पशुओं में इससे संतानोत्पत्ति की संख्या में कमी हो जाती है।

5.2 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई का उद्देश्य पशुपालकों को निम्नलिखित विषयों से संबंधित विस्तृत जानकारी उपलब्ध कराना है :-

1- बांझपन के कारण।

2- बांझपन का पशु के उत्पादन पर प्रभाव।

3- बांझपन से अनुत्पादक या अनार्थिक पशु का पशुपालन व्यवसाय पर पड़ने वाला प्रभाव।

4- बांझपन का निदान।

5- इसका उपचार एवं नियंत्रण की विधियों की जानकारी।

5.3 बांझपन (Sterility) -

यह नर एवं मादा पशुओं की बीमारी है। मादा पशुओं में बांझपन का अर्थ गर्भ धारण न करना जबकि नर पशुओं में उनके वीर्य में यह गर्भधारण की शक्ति कम करता है।

5.3.1 संबंधित शब्द (Terminology) -

जनन क्षमता (Fertility) :- पशु की बच्चे पैदा करने की क्षमता को पशु की जनन क्षमता (Fertility) कहते हैं। अधिक व कम जनन क्षमता इस बात पर निर्भर करती है कि मादा पशु कितनी बार गर्भधारण करती है अथवा एक बार में कितने बच्चे पैदा करती है।

बहु प्रजनकता (Prolificacy) :- बहुप्रजनकता से तात्पर्य है कि पशु गर्भधारण के पश्चात् कितने बच्चे पैदा करती है अथवा अपने जीवन काल में मादा पशु ने कितने बच्चे पैदा किये।

जनन उत्पादकता (Fecundity) :- क्रियाशील अण्डाणु (Ova) पैदा करने की जननशक्ति ही मादा पशु की जनन उत्पादकता कहलाती है।

असंसेचित (Infertility) एवं बांझपन (Sterility) :- अस्थायी तौर पर पशु की प्रजनन क्षमता की विफलता या रूक जाना जो ठीक किया जा सकता है उसे असंसेचित (Infertility) कहते हैं। परन्तु जब जननक्रिया स्थायी तौर पर समाप्त हो जाती है तो इसे बांझपन (sterility) कहते हैं और इस प्रकार की मादा जिससे कोई बच्चा पैदा नहीं हो सकता, बांझ (Barren) कहलाती है।

बांझपन की सीमा (Extent of sterility in Fram Animals) :- कुछ पशु तो एक समूह में हमेशा ही बांझपन से प्रभावित पाये जाते हैं। कुछ असंसेचित होते हैं। यह दशा निम्नकारणों पर निर्भर करती है-

(1) जाति (Species)

(2) जलवायु/वातावरण की दशायें (Climatic/Environmental Conditions)

(3) आयु (Age)

(4) स्वच्छता (Cleanness)

(5) प्रजनन-पद्धति-प्राकृतिक या कृत्रिम

साधारणतया युवा पशुओं में बांझपन कम (2-3%) तक पाया जाता है परन्तु जैसे-जैसे उम्र बढ़ती जाती है तो बूढ़े पशुओं में बांझपन अधिक (5-8%) होता जाता है। जिसके कारण से इन्हें निकालना पड़ता है। ताकि दूध उत्पादन में कमी न आये पायें, लाभ कम न होने पायें, चारा-दाना बेकार न हों और झुण्ड में सुधार किया जा सके जिससे प्रजनन एवं उत्पादन क्षमता बनी रहे। भा0 वेटनरी अनु0 सं0 (IVRI) इज्जतनगर पर लिखे गये एक सर्वेक्षण से अनुर्वरता (Infertility) की निम्नलिखित सीमायें ज्ञात हुई है-

बछियों में	22.4%
गायों में	11.35%
भैस की बछियों में	10.28%
वयस्क भैंसों में	6.28%
सांड़ो में	11.65%
भैंसों सांड़ो में	3.65 %

उच्च स्तर की जनन क्षमता का महत्व (Importance of high level of fertility) :-

1- ब्याने के बीच अंतराल (calving interval) को कम करके दूध के ह्रास को कम करना।

2- झुण्ड में बांझपन से प्रभावित पशुओं को निकालकर प्रोन्नति की दर का बढ़ाना।

3- जब बछिया असंसेचित गायों (Infertile cattle) की जगह बदलाव के लिए पर्याप्त संख्या में उपलब्ध हों तो कम जननक्षमता वाली गायों को निकालकर उच्च स्तर की झुण्ड प्रजनन तथा उत्पादन क्षमता बनाये रखना।

4- असंसेचित (Infertile) गायों पर होने वाले चारे-दाने तथा श्रम पर नुकसान को कम करना।

5- झुण्ड से अधिक आय प्राप्त करना।

6- पशुओं के मूल्य में होने वाले ह्रास को रोकना।

7- प्रति यूनिट श्रम तथा उत्पादित व्यय पर ज्यादा आय प्राप्त करना।

5.3.2 असंसेचित तथा बांझपन की दशायें (Contions of infertility) -

ये दोनों ही अवस्थायें विभिन्न कारणों से हो सकती है जिनमें प्रमुख निम्नलिखित हैं-

1- ग्रंथियों की गड़बड़ी (Glandular disturbance)

2- जीवाणु संक्रमण (Bacterial Infection)

3- पोषक की कमी (Malnutrition)

4- अंगो की दोषपूर्ण बनावट (Anatomical defects)

5- अधिक उम्र, जलवायु आदि

उपरोक्त दशाएं दोनों अवस्थाओं में एक से हैं परन्तु जब संक्रमण या दोष स्थिर रूप से हो जाता है और उपचार से भी जननक्षमता ठीक नहीं हो पाती तो उससे पशु अनुसंसेचित से पूर्णतः बाँझ (Sterile) हो जाता है।

5.3.3 बांझपन के कारण (Causes of sterility) -

बांझपन के मुख्य कारण निम्नांकित हैं-

1- शरीर रचनात्मक खराबी (Anatomical defects)

2- रोगात्मक कारण (Pathological causes)

3- शरीर क्रियात्मक कारण (Physiologial causes)

4- दुर्घटना कारण (Accidental causes)

5- पोषण संबंधी कारण (Nutritional causes)

6- आंनुवंशिक कारण (Genetic causes)

7- प्रबंध संबंधी कारण (Managemental causes)

8- पर्यावरणीय संबंधी कारण (Environmental causes)

9- अन्य कारक (Miscellaneous causes)

1- **शरीर रचनात्मक संबंधी कारण (Anatomical caues) :-** शरीर की रचना संबंधी खराबी शरीर बनते समय नर या मादा किसी में भी हो सकती है-

(1) स्क्रोटल हार्निया/वृषणपर सूजन (Scratal Hernia) :- नर पशु के शरीर में इन्गूनल नलिका (Ingunial Hernia) द्वारा रक्त जाकर या आंत्र वृषण में अधिक मात्रा में इकट्ठा हो जाता है तो इस पर सूचन हो जाती है। इस कारण शुक्राणु (Sperm) बनना बंद हो जाते हैं और पशु बांधपन हो जाता है।

रोकथाम - आपरेशन करना प्रभावकारी होता है।

(2) क्रिप्टोरकिडिज्म (Cryptorehidism or Rings) :- कभी-कभी जब पशु के वृषण (testies) शरीर के अण्डकोष (Scrotal sac) में नहीं आते हैं शरीर में वृषण रहने पर तापक्रम उपयुक्त न होने से शुक्राणु नहीं बनते हैं। वह दशा वंशागत भी बताई गयी है।

रोकथाम एवं उपचार - ऐसे पशुओं को झुण्ड से अलग कर दिया जाय। गोनडोट्रापीन हार्मोन के प्रयोग से थोड़ी सफलता मिल सकती है।

(3) इम्पोटोन्शिया कोकन्डी (Impotentia cocundi) :- रिट्रेक्टर मांसपेशियों की खराबी तथा दुर्बलता होने से नर के लिंग में उचित तनाव नहीं आ पाता। इस तरह पशु समागम में असमर्थ रहता है जिससे नर पशु वीर्य नहीं छोड़ पाता।

उपचार - कोई नहीं है।

(4) श्वेत ओसर रोग या (परसिसटेन्ट हाइमेन) का स्थिर होना (White heifer diseae or persistent hymen) :- मादा युवा बछियाँ में योनि पर पतली झिल्ली होती है जिसे हाइमेन (Hymen) कहते हैं। यह प्रायः प्रौढ़ होने पर नष्ट हो जाती है। परन्तु कभी-कभी कड़ी और मोटी हो जाती है जिससे न तो समागम हो पाता है और न ही पशु कृत्रिम रूप से गर्भित किया जा सकता है अतः अस्थिर रूप से बांझपन रहता है।

उपचार - आपरेशन द्वारा काटकर ठीक किया जा सकता है।

(5) असंसेचित अण्डाशय (Infertile ovearies:- इस के मादा अण्डाशय में फालिकिल (Follicles) विकसित नहीं हो पाते अथवा अपरिपक्व फालिकिल रहते हैं। अतः मादा पशु गर्मी (heat) में नहीं आ पाती है।

उपचार - ओस्ट्राडियोल हार्मोन का प्रयोग लाभकारी है।

(6) फ्री मार्टिन (Free martin) :-जब नर व मादा बच्चे एक ही साथ जन्म लेते हैं तो प्रायः ऐसा देखा गया है कि मादा बच्चे बाँझ होते हैं, इस अवस्था में फ्री मार्टिन कहते हैं। ऐसा हारमोनल असंतुलन, गर्भकाल में ही जननेद्रिय की गड़बड़ी के कारण होता है। गर्भाशय में पल रहे दोनो बच्चों को माँ के गर्भनाल (placenta) द्वारा रक्त पहुँचता है। बछड़ा अपने विकासकाल में अपने साधारण अणुकोष (testis) एक नर हार्मोन निकालता जो रक्त द्वारा बछिया के शरीर में चारों ओर घूमता है। यदि यह हार्मोन काफी मात्रा में पैदा होता है तो बछिया के जनन अंगों का विकास ही नहीं हो पाता है। यह बछियाँ बड़ी होकर बांझ हो जाती है। इसका कोई इलाज नहीं है।

(7) जननअंगो का अविकसित, जुड़ा एवं ठोस होना तथा अनावश्यक अंगो की

उत्पत्ति (Fision, incomplete canalization and Malformation of reproductive organs):-

(a) कभी-कभी प्रजनन अंगों जैसे वास डेफरेंस, फेलोपियन ट्यूब, यूटिरिन हार्न (uterine horns) सामान्य रूप से विकसित नहीं होते और ये ठोस हो सकते हैं। या (दोहरी) जुड़वा योनि (Double vaginae) (दोहरी सर्विक्स) (double cervix) जुड़वा ग्रीवा की स्थिति होती है। ये दशायें समागम के समय बाधा उत्पन्न करती है।

(b) हार्निया (आंत उतरना), नगर जननेंद्रिय का अपूर्ण विकास, मूत्र मार्ग की रचना में गड़बड़ी तथा उभयलिंगता (hermaphoditism) आदि, नर पशुओं में बांझपन के कुछ अन्य मुख्य कारण हैं। उभयलिंगता ढोरों में कम देखी गयी है।

(8) अंगों की अनुपस्थिति :- किसी-किसी पशु में जनन अंगों में कुछ अंग बिल्कुल नहीं होते या किसी में सामान्य न होकर टेढ़े-मेढ़े हो जाते हैं। ये निम्नलिखित हो सकते हैं-

(a) गोनाडल अप्लेशिया (Gonadal Aplasia) :- जब नर व मादा दोनो में ही एक या दोनों प्रजनन अंग अनुपस्थित होते हैं।

(1) ओवैरियन अप्लेशिया (Ovarian Aplasia) :- इसमें दोनों अण्डाशय (Ovaries) अनुपस्थिति होती है। यह प्रभावी आटोसोमल जीन द्वारा होता है। यह दशा बहुत कम ही होती है। ऐसी बछिया प्रजनन उम्र तक सामान्य दिखती है। परन्तु समय से गर्मी में नहीं आती है।

(1) ओवैरियन हाइपोप्लेशिया (Ovarian hypoplasia or incomplete of ovary) :- प्रभावित अण्डाशय में जर्म कोशिकायें (germ cells) या पूर्णतः (total hypoplasia) अथवा थोड़े संख्या में (Partial hypoplasia) नहीं पायी जाती है। यह आनुवंशिक कारणों से होती है। अंशतः हाइपोप्लेशिया (partial hypoplasia) युक्त गाय के पास सामान्य जनन अंग होते हैं, वे गर्मी में भी आती है, गर्भाधान व गर्भधारण करती है तथा बच्चे को सामान्य अवस्था में जन्म देती है लेकिन इसके साथ ही इस अनैच्छिक गुण को भी अगले पीढ़ी में स्थानांतरित करती है। ऐसी पशुओं को छांट देना चाहिए।

भारतीय गायों में लगभग यह दशा 0.29% है लेकिन पूर्वोत्तर भारत में गायों में उच्चस्तर (4.3%) तक पाया गया है। जबकि भैसों में 1% तक ओवैरियन हाइपोप्लेशिया की दशा पायी जाती है।

(3) सिस्टीक ओवैरियन डिजनरेशन (Cystic Ovarian degeration - COD) :- यह बहु-ग्रंथीय सिंड्रोंम है। जिसमें अण्डाशय में अण्डाणु की वृद्धि तो होती है परन्तु एल0एच0 (L.H.) की कमी के कारण ये अण्डाणु (Ova) फालिकिल से बाहर नहीं आ पाते हैं। पुनःदूसरा अण्डाणु उत्पन्न हो जाता है और वह भी बाहर नहीं निकल पाता है। ऐसी स्थिति बार-बार होने से अण्डाशय को फालिकिल्स बिना निकले अण्डाणुओं से भर जाते हैं। ऐसे अण्डाणु सिस्ट (Cyst) कहलाते हैं तथा ऐसी अवस्था को सिस्टीक

ओवरी (cystic ovary) कहते हैं। गाय इस दशा में बार-बार गर्मी में आती है परन्तु अण्डाणु का उचित स्थान पर उपलब्धता न होने से गर्भधारण नहीं होता ऐसी अवस्था जिसमें गाय अनियमित समय से गर्मी में आती है, निम्फोमेनिया कहलाती है। ये गायें बार-बार, दूसरी गायों पर चढ़ती हैं जिसे इन्हें क्रानिक बुलर (Chronic buller) कहते हैं।

उपचार- ऐसी दशा में अण्डाशय को दबाकर सिस्ट को फोड़ देना चाहिए और या का इंजेक्शन देना चाहिए।

(b) टेस्टिकुलर डिजनरेशन (Testicular degeneration):- यह टेस्टीस की एक असामान्य दशा विभिन्न कारणों जैसे - शारीरिक, गर्मी तथा सर्दी आदि, अत्यधिक खराब स्थिति में तथा टाक्सीमिया होने से टेस्टिकुलर डेजनरेशन होता है। गर्मी की असंसेचित जो विदेशी साड़ों तथा भेड़ों में सामान्य है। इसका एक उदाहरण है। खुरपका, मुंहपंका, बीमारी (FMD) तथा कुछ अन्य वाइरसों के कारण टेस्टिकुलर डिजनरेशन होता है।

प्रभावित नर पशु में उर्वरता कम होती है। वीर्य दूधिया से जलीय हो सकता है जो कि विभिन्न दशाओं पर निर्भर करता है। शुक्राणुओं की संख्या कम हो सकती है तथा इनकी गति धीमी हो सकती है।

(c) आर्किटिस (Orchitis or inflamation of testes) :- यह संक्रामक गर्भपात तथा वाइरल संक्रमण में सांड़ों में होता है। एक्यूट आर्किटिस (Acute orchitis) में सांड़ के अण्डकोष (Scrotum), गरम, दर्दयुक्त तथा फूल जाते हैं जिसके साथ ही साथ पाइरोक्जिया (Pyrexia), एनरोक्सिया (Anorexia) भी हो सकती है। संक्रामक गर्भपात (Brucella) से प्रभावित साड़ को प्रजनन कार्य में नहीं लेना चाहिए।

(d) टेस्टिकुलर फाइब्रोसिस (Testicular fibrosis) :- प्रभावित पशु में यह टेस्टिकुर डिजनरेशन का अंतिम परिणाम है जिसमें पशु सामान्य या सेक्स लिबिडो (sex libido) उच्चतम होता है लेकिन इनका वीर्य अत्यधिक पतला तथा इसमें शुक्राणुओं की संख्या कम होती है। ऐसे पशु (बांझ होते हैं) प्रजनन के लिए उपयोग नहीं करना चाहिए।

(e) टेस्टिकुलर कैल्सीफिकेशन (Testicular calcification) :- यह दशा भैंस सांड़ में अधिकतर पायी जाती है। प्रभावित टेस्टिस कड़ा और धात्विक आभास पैदा करता है। ऐसे पशु बांझ होते हैं।

(f) टेस्टिकुलर नीओप्लाज्मा **Testicular neoplasms)** :- यह गाय, भैंस की अपेक्षा सूअरों में अधिक पाया जाता है।

(g) टेस्टिकुलर हाइपोप्लेशिया (Testicular Hypoplasia) :- यह एक या दोनों

गोनाड (Testes) में शुक्राणुओं की अनुपस्थिति या बहुत कम संख्या में होने से उत्पन्न होती है। इसमें दोनों टेस्टिस (Testes) के प्रभावित होने से पूर्णतः हाइपोप्लेसिया की स्थिति होती है। प्रभावित पशु के एक या दोनों टेस्टिस सामान्य आकार से छोटे होते तथा अन्य जनन अंगों सामान्य आकार के होते हैं। इनके शुक्राणुओं की संख्या कम तथा इनकी गति कम होती है। ऐसे पशुओं का प्रजनन के लिए प्रयोग प्रयोग नहीं करना चाहिए।

(h) डिम्बावाहिनी (Oviduct) अप्लेशिया (Aplasia) :- यह डिम्बवाहिनी की पूरी तरह अनुपस्थिति की दशा होती है जिससे निषेचन संभव ही नहीं हो सकता है। यह गाय तथा भैसों में बहुत कम पाया जाता है।

(i) गर्भाशय अप्लेशिया (Uterus Aplasia) :- यह (1) गर्भाशय की पूर्णतः अनुपस्थिति या (2) गर्भाशय की अंशतः अनुपस्थिति या हाइपोप्लेसिया, दो दशाओं में होता है। यह दशा सामान्यतः बहुत कम पायी जाती है लेकिन यदि हैं तो उस पशु को प्रजनन के लिए प्रयोग नहीं करना चाहिए।

रोगात्मक कारण (Pathological causes) :-

(A) विशिष्ट रोग (Specific diseases) :-

1. **संक्रामक गर्भपात (Brucellosis) :-** यह एक ब्रुसेला एर्बाटस नामक जीवाणु द्वारा होता है। ये जीवाणु द्वारा होता है। ये जीवाणु गर्भाशय में सूजन पैदा कर देते हैं और गर्भ में पल रहे बच्चे 5-8 माह में गर्भाशय से हट जाता है। ये जीवाणु गर्भाशय की आंतरिक त्वचा को नष्ट कर देते हैं और बच्चा गर्भ में ही मर जाता है। प्रत्येक वर्ष यदि संक्रमण दूर न हुआ तो गर्भपात होता जाता है।

उपचार - अलगाव, रोगग्रसित पशु का निष्कासन, टीकाकरण, जीवाणुहनन एवं अति स्वच्छता, कृत्रिम गर्भाधान का प्रयोग, यंत्रों का जीवाणु हनन (Sterilization of equipments).

2. **ब्रिब्रीओसिस (Vibriosis) :-** यह रोग भी एक जीवाणु विब्रियोंफीट्स द्वारा पैदा होते हैं। ये जीवाणु प्राकृतिक समागम में सांड़ के शिश्न द्वारा अथवा कृत्रिम गर्भाधान से वीर्य द्वारा मादा के जनन अंग में प्रवेश कर जाते हैं। बच्चा गर्भाशय में ही मर जाता है। और 4-7 की अवस्था में गर्भपात हो जाता है। यह जीवाणु एक माप से दूसरी गाय के जनन अंग में चले जाते हैं।

   उपचार (Treatment & Prevention) :- अलगाव, रोगग्रसित पशु का निष्कासन, गर्भपात के बाद 4 माह तक गाभिन न करना, कृत्रिम गर्भाधान का प्रयोग, अत्यधिक स्वच्छता व जीवाणु हनन। वीर्य में एन्टीबायोटिक का प्रयोग। तनुकारक का उचित प्रयोग व रख रखाव।

3. **ट्राइकोमोनियोसिस (Trichomoniasis) :-** यह एक प्रोटोजोआ ट्राइकोमोनास फीट्स (Trichomonas foetus) द्वारा होता है। वीर्य अथवा साँड़ के शिश्न के द्वारा मादा के जनन अंग में प्रवेश पाते हैं। यह गर्भ को 3-10 सप्ताह में ही नष्ट कर देता है।

बच्चा गर्भाशय में ही घुल जाता है। गर्भाशय में रक्त तथा पीप (Pus) भर जाता है।

उपचार :- कोइ उपचार प्रभावकारी नहीं है। पशु का निष्कासन ठीक रहता है।

4. **लेप्टोस्पोरोसिस (Leptosporosis) :-** यह लेप्टोस्पाइरा पोमोना (Leptospira pomona) जीवाणु द्वारा होता है और पशु में पीलिया रोग, थनैला रोग, गर्भपात, खूनी पेशाब आदि होता है। कभी-कभी पशु की मृत्यु हो जाती है। यह रोग पशुओं से मनुष्यों में भी जाता है।

   उपचार (Treatment & Prevention) :-अलगाव, कृत्रिम, गर्भाधान, एन्टीबायोटिक्स जैसे पेनीसिलिन, स्ट्रेप्टोमाइसीन का इंजेक्शन 10 दिन तक देना, जावीणु हनन, स्वच्छता, पशु को आराम देना।

(b) आविशिष्ट रोग :- इन रोगों के वास्तविक कारक और संक्रमण के बारे में बहुत कम जानकारी है। प्रमुख रोग निम्नलिखित लिखित है-

1. **जनन अंगों में सूचन होना (Inflammation of reproductive organs)** :-

(i) भग में सूजन (Vulvitis) :- इसमें मादापशु के भाग (vulva) में सूजन तथा दर्द होता है। भग से एक स्राव निकलता है।

(ii) योनि में सूजन (Vulvitis) :- योनि में सूजन होता है। यह कई कारणों जैसे-ट्रोमा (trauma), लैसीरेशन्स और संक्रामण जैसे-डिस्टोकिया, एम्ब्रियोटोमी (embryotomy), प्लेसेंटा को हटाते समय, प्रोलैप्स (Prolapse of vagina) और एन्टीसेप्टिक के उपयोग के समय संक्रमण हो सकता है। अधिकांश दशाओं में यह विशिष्ट या अविशिष्ट जीवाणु संक्रमण होता है, जैसे-वेसिकुलर विनरल डिजिस (Vasicular Veneral Diseases) कैम्पाइलोबैक्टिरियोसिस (Campylobacteriosis) और ट्राईकोमोनियोसिस (trichomoniasis) या *स्ट्रेप्टोकोकाई, को-पायोजीनस, ई-कोलाई और स्यूडोमोनास औरुजिनोसा* (Pseudomonas aeruginosa).

इस दशा में योनि से पारदर्शक म्यूकस युक्त स्राव निकलता है जिससे पूंछ, बटक (butolocks) और भंग मिट्टी के साथ सने से रहते हैं। भारत में गायों व भैसों में यह 1.72% - 5% तक पाया जाता है।

उपचार - एन्टीबायोटिक का उपयोग करना।

(iii) गर्भाशय में सूजन (Metritis) :- यह रोग वास्तव में गर्भाशय पर सूजन का आकार उनमें पीप जैसा गाढ़ा स्राव निकलता है इससे पशु को बहुत कष्ट होता है और असहय पीड़ा को कारण उसकी मृत्यु हो जाती है। यह प्रायः नये ब्याये हुए पशुओं में देखा जाता है। पशुओं में यह उग्र (Acute) तथा दीर्घकालिक (Chronic) दो अवस्थाओं में प्रकट होता है। यह कारणों से होता है जैसे-संक्रमण-जीवाणुओं- *स्ट्रेप्टोकोकाई, स्टैफिलोकोकाई, ट्राइकोमोनास फीट्स को0 पायोजिनस, माइकोबैक्टीरियम ट्यूबरकुलोसिस* तथा कोलाई द्वारा यह रोग हो सकता है। जेट न गिरना, कष्टप्रद प्रसव (Dystokia) गर्भाशय में प्रदूषित हाथ डालना तथा संक्रामक गर्भपात के फलस्वरूप ये जीवाणु मादा की योनि में

प्रवेश पाते हैं।

उपचार - एन्टीबायोटिक, एंटीसेप्टिक औषधियों का प्रयोग, स्वच्छता, अलगाव।

(iv) अण्डाशय में सूजन (Ovaritis) :-

(v) फैलोपियन नलिका में सूजन (Salpingitis) :- यह गर्भाशय में संक्रमण (Metritis), पायोमेट्रा, पेरिटोनाइटिस, जेर न गिरना इत्यादि के द्वारा संक्रमण से होता है। इसमें को *पायोजिनस ई-कालाई, स्ट्रेप्टोकोकाई, स्टेफिलोकोकाई* जीवाणु का संक्रमण होता है। प्रभावित, नलिका कठोर, कार्ड के समान, बड़ी और परीक्षण के समय पाल्पेबुल (Palpable) होती है। यह गायों (भारतीय) में 0.22 से 3% तक तथा भैसों में 0.05 से 13.09 तक होती है।

(vi) वृषण पर सूजन (Orchitis) :- इसमें अण्डकोष (Scrotum) गरम होता जाता है, दर्द होता है, फूल जाता है। यह कई कारणों से हो सकता है। जैसे ट्रोमा (Trauma), संक्रामक गर्भपात और वाइरल संक्रमण द्वारा हो सकता है।

उपचार - एन्टीबायोटिक का उपयोग ।

इन सभी अंगो पर सूजन होने से उपरोक्त अंग ठीक से कार्य नहीं कर पाते हैं जिससे पशु बच्चा पैदा करने में असमर्थ होते हैं।

2. जनन अंगों में पानी की उपस्थिति :-

(1) गर्भाशय में पानी का एकल होना (Hydrometra)

(2) गर्भनाल में पानी का भर जाना (Hydrosalpinx)

उपचार - स्वच्छता, द्रव स्थानांतरण, एटीबायोटिक्स का उपयोग जनन अंगों में।

3. जनन अंगो में रक्त भर जाना :-

(1) गर्भाशय रक्त भरा होना (Heamatometra)

(2) गर्भाशय नाल में रक्त का इकट्ठा होना (Heamato-Salpinx)

उपचार - रक्त रोकने वाली औषधि (जैसे-फिटकरी) के घोल से जनन अंगों की धोना तथा एण्टीबायोटिक्स का प्रयोग।

4. जनन अंगों में पीव भरा होना (Heamatometra) :-

(1) गर्भाशय में पीव भरा होना (Pyometra)

(2) गर्भाशयनाल में पीव भरा होना (Pyosalpinx)

उपचार - (Treatment & Prevention) :- द्रव का बदलना, लैक्टिक अम्ल 5-10% का भरना, एन्टीबायोटिक्स का प्रयोग, फिटकरी के 2% घोल से जनन अंगों को धोना।

5. जनन अंगो में गैस का होना (Presence of gas in genitals) :- जनन अंगो में गैस का भरा होना पाइसोमेट्रा (Pysometra) कहलाता है।

उपचार - (Treatment & Prevention) :- द्रव का बदलना, लैक्टिक अम्ल 5-10%

का भरना, एन्टीबायोटिक्स का प्रयोग, फिटकरी के 2% घोल से जनन अंगों को धोना।

3. शरीर क्रियात्मक कारण (Physiological causes) :- संभवतः बांझपन का यह विस्तृत व बड़ा कारण है। यह मुख्यतः शरीर में पाये जाने वाले विभिन्न हार्मोन जो प्रजनन के लिए जिम्मेदार होते हैं, उनकी बीच समन्वय, में गड़बड़ी तथा असंतुलन उत्पन्न होने से पैदा होती है। मुख्य शरीर क्रियात्मक निम्नलिखित है-

(i) गाय का पूर्ण युवा न होना (Impaired sexual maturity) :- पशुओं के प्रौढ़ होने पर उनके मस्तिष्क में स्थिति पिट्यूटरी (Anterior pituitary) से प्रजनन पोषी हार्मोन्स (GTH) निकलते हैं जब इन हार्मोन्स (GTH = Gondotropic Hormon), FSH (Follicular stimulated Hormone) में तथा L.H. (Leutimizing Hormone) की कमी या उत्पत्ति नहीं होती है जो अग्रपोष के अविकसित या पूर्ण विकसित न होने की अवस्था में हो सकता है तो जनन अंगों का पूर्ण विकास नहीं हो पाता है जिससे वे पशु संतानोंत्पत्ति में असमर्थ होते हैं।

उपचार - स्टिरलेस्ट्राल-डायप्रोप्यनिट के इंजेक्शन लाभप्रद है।

(ii) अनियमित मदचक्र (Irregular Oestrus cycle) :- गाय का ऋतुमय (Heat) होना इस्ट्रोजेन हार्मोन पर निर्भर करता है लेकिन जब शरीर में GTH के हार्मोंस का संतुलन बिगड़ जाता है तो अण्डाशय से अण्डाणु का उत्पादन न होना, गाय का ऋतुमय (heat) न होना सहवास की इच्छा न होना जैसी समस्यायें उत्पन्न होती है।

(iii) अण्डाशय की असामान्य क्रियायें (Abnormal Functions of Ovary) :- मादा में अण्डाशय का सामान्य कार्य अण्डाणु पैदा करके मदकाल (Heat) के दौरान उसे छोड़ देना है ताकि वह शुक्राणु से निषेचित हो जाये। परन्तु असामान्य क्रियाओं के कारण यह क्रिया रुक जाती है ऐसा (Leutenizing hormone) की कमी के कारण होता है। ऐसा पशु बांझ हो जाता है। इसमें अण्डाणु तो फालिकिल में बनते हैं लेकिन L.H. की कमी के कारण है वह फालिकिल से बाहर नहीं निकल पाते हैं। फिर दूसरा अण्डाणु उत्पन्न हो जाता है तथा वह भी फालिकिल से बाहर नहीं आ पाता है। इस प्रकार से सिस्ट बनाते हैं। गाय हर बार ऋतुमयी (Heat) हो जाती है। परन्तु अण्डाणु की अनुपस्थिति में गर्भाधान नहीं होता है। पशु का अण्डाशय फालिकिल सिस्टस से भर जाता है। जिसे सिस्टीक ओवरी कहते हैं। गाय के बार-बार गर्मी में आने की दशा को निम्फोमेनिया कहते हैं तथा गाय बार-बार दूसरी गायों पर चढ़ती है, तो उन्हें बुलर (Buller) कहते हैं।

(iv) अण्डाणु - शुक्राणुओं का कम बनना (Lack of oogenesis and spermatogenesis) :- एफ0 एस0 एच0 (F.S.H.) अण्डाशय तथा वृषण को उत्तेजित करता है तो क्रमशः अण्डाणु तथा शुक्राणु जनन क्रिया पैदा करते हैं और इंटरस्टिशियल कोशिकाओं को उत्तेजित करके एन्ड्रोजन हार्मोन्स उत्पन्न करते हैं जिससे पशुओं में सहवास की इच्छा उत्पन्न होती है। इन हार्मोन्स की कमी की बजह से सामान्य जनन क्रियाओं में बाधाएं उत्पन्न होती हैं-

(v) कार्पस लूटियम का अण्डाशय पर स्थिर बना रहना (Persistent Carpus tuteum) :- जब अण्डाणु फालिकिल को तोड़कर अण्डाशय से बाहर निकलता है और वह निषेचित होकर जायगोट तथा गर्भ बनता है तो अण्डाशय के इस स्थान पर कार्पस लूटियम (carpus luteum) ग्रंथि बन जाती है जो पूरे गर्भकाल तक रहती है। यहाँ तक कि बच्चे पैदा करने के बाद भी अण्डाशय पर रहती है तथा लगभग 1.5 माह बाद खत्म हो जाती है। फिर FSH तथा LH का सामान्य कार्य शुरू हो जाता है। और पुनःलगभग 60 दिन के बाद अण्डाशय से अण्डाणु निकलता है और गाय ऋतुमयी (heat) होती है। लेकिन यदि असामान्य स्थिति में कार्पस लूटियम अण्डाशय पर स्थिर बना रहता है तो गाय दौबारा ऋतुमयी नहीं होती है। इस प्रकार जनन क्रिया रुक जाती है।

उपचार (Treatment) :- इस दशा में गुदा के रास्ते हाथ डालकर कार्पस लूटियम को अण्डाशय पर से मसलकर नष्ट कर देना चाहिए तथा इस्ट्रोजन हार्मोन्स का इंजेक्शन देना चाहिए।

(vi) गाय का क्रमशः ऋतुमयी होना (Cystic Ovaries or Nymphomania):- गाय अण्डाशय फालिकिल में सिस्ट के भर जाने से बार-बार गर्मी में आती है लेकिन गर्भाधान नहीं होता है। अण्डाशय में सिस्ट भर जाने से ऐसी दशा को सिस्टिक ओवरी कहते हैं। गाय के बार-बार गर्मी में आने की दशा को निम्फोमेनिया कहते हैं।

(vii) शान्त मदकाल या मदचक्र (Silent or quiescent Estrous) :- कुछ मादाओं सामान्य अण्डाशय की क्रियाओं तथा मदचक्र होता है लेकिन मदचक्र के दौरान में ऋतुमयी (heat) होने के लक्षण नहीं दर्शाती हैं। गाय या भैंसे शांत या शर्मिली प्रजनक (silent or shy breaders) कहलाती हैं। संभवतः मुख्य रूप से प्रोजेस्टेशन हार्मोन की कमी के कारण ऐसा होता है।

4. आकस्मिक कारण (Accidental causes) :- सहवास अथवा ब्याने के समय नर व मादा जननेंद्रिय में लगी हुई चोटें भी स्थायी अथवा अस्थाई बांझपन का कारण बन जाती है। ये निम्नलिखित प्रकार है-

(i) जनन अंगों पर घाव/सूजन का होना (Laceration, bruishing and inflammation of genitals) :- नर जनन अंगों में चोट लगने से अण्डकोष तथा इपिडिडिमिस में सूजन आकार शुक्राणु उत्पादन की क्रिया समाप्त हो जाती है। मादा जनन अंगों में चोट लगने से भग-शोध (vulvitis) योनि-शोध (Vaginitis) गर्भाशय शोध (metritis) गर्भाशय में पीव पड़ जाना (Pyometra) तथा गर्भाशय का उलट जाना (Prolapse of uterus) आदि रोगों के हो जाने का भय रहता है।

(ii) गर्भाशय या योनि का बाहर निकल आना (Prolapse of vagina or uterus) :- कुछ पशुओं में कभी-कभी बच्चा होने वाले गर्भावस्था में या बाद गर्भाशय

तथा योनि बाहर निकल आते हैं और जब कोई अप्रशिक्षित मनुष्य से उचित स्थान पर बैठाने के लिए मदद की जाती है तो जनन अंगो पर जीवाणु का संक्रमण लग जाते हैं जिससे गर्भपात व बांझपन का अंदेशा बन जाता है।

उपचार (Treatment) :- यूट्रोटोन का प्रयोग, झुंड से अलगाव (isolation) स्वच्छता, प्रोटीन व लवण युक्त भोजन, फर्श का ढलान पशु के आगे की ओर रखना, जीवाणु हनन (Sterilization)

(iii) गर्भाशय तथा योनि की परत पर छेद होना (Perforation of vaginal/uterine wall) :- डिस्टोकिया जैसी स्थिति में जब बच्चा तिरछा हो जाता है तो उसे खीचकर निकाला जाता है। इससे गर्भाशय या योनि की परत फट जाती है जहाँ पर जीवाणु का संक्रमण होने से बांझपन होने का कारण बन जाती है।

उपचार (Treatment) :- प्रशिक्षित व्यक्ति अथवा डाक्टर की मदद लें। स्वच्छता, पौष्टिक आहार का ध्यान रखे।

(iv) रुकी हुई जेर (Retained placenta) :- जब अनियमित गर्भपात होता है तो जेर का कुछ हिस्सा (Placenta) भग ओष्ठों (lips of vulva) के बाहर लटकती हुई दिखाई देती है। इसको रूकी हुई जेर (retained placenta) कहते हैं। यदि इनका भली-भांति उपचार-न हो पाया तो शीघ्र ही इसमें जीवाणु संक्रमण होकर गर्भाशय शोध (Metritis) गर्भाशय-पूयता (Pyometra) आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं जिससे पशु गर्भधारण करने के योग्य ही नहीं रहता है। इस प्रकार इनका प्रजनन मूल्य कम हो जाता है।

(v) गर्भाशय शोध (Metritis) :- इसमें गर्भाशय में सूजन आकर उसमें से पीव जैसा गाढ़ा स्राव निकलता है। यह प्रायः नये ब्याये हुए पशुओं में देखा जाता है। यह कुछ जीवाणुओं जैसे-*स्ट्रेप्टोकोकाई, स्टेफिलोकोकाई, को0 पायोजीनस, टी0 बी0* जीवाणु तथा ई-कोलाई से संक्रमण से होता है। जेर न गिरना, डिस्टोकिया, गर्भाशय में दूषित हाथ डालना तथा संक्रामक गर्भपात के फलस्वरूप के जीवाणु मादा योनि में प्रवेश करते हैं।

पोषण संबंधी कारण :- पशुओं की जरूरतों से कम पोषक तत्वों का मिलना भी जनन क्रिया पर प्रभाव डालता है। संतुलित आहार न मिल पाने के कारण हमारे देश में लगभग 20-40% पशु प्रतवर्ष बांझ हो जाते हैं। अतः पशुओं को सदैव संतुलित भोजन ही मिलना चाहिए। विभिन्न पोषक तत्वों का जनन क्षमता पर पड़ने वाला प्रभाव निम्नलिखित है : -

(i) कार्बोहाइड्रेट :- पेनसेल्विनिया (USA) में किये गये एक प्रयोग से यह संकेत होता है कि कम कार्बोहाइड्रेट (या कम उर्जा वाले भोजन) लेने से शुक्राणुजनन कि क्रिया में देरी होती है तथा साथ ही शुक्राणुओं की संख्या तथा उनकी गति में भी कभी होती है।

(ii) वसा (Fats) :- अभी तक बड़े पशुओं तथा रुमिनेट्स में वसा का जनन क्षमता पर

क्या प्रभाव होता है इस पर कोई प्रयोग नहीं किये गये हैं। लेकिन प्रयोगशाला जन्तुओं जैसे चूहे पर किये गये प्रयोगों से स्पष्ट है कि जनन के लिए असंतृप्त वसा अम्लों का होने आवश्यक है। वसा की कमी से कई समस्या उत्पन्न होती है- नर में कामुकता (lack of libido in males) में कमी, गर्भ का गर्भाशय में नष्ट होना तथा गर्भपात हो जाना।

(iii) प्रोटीन :- अभी तक प्रोटीन का जनन क्षमता पर क्या प्रभाव होता है निश्चित रूपसे ज्ञात नहीं है। परन्तु अण्डाणु व शुक्राणु क बसा प्रोटीन की आवश्यकता के स्पष्ट करता है। अतः भोजन में पर्याप्त मात्रायें प्रोटीन होनी चाहिए।

(iv) खनिज (Minerals) :- खनिज पदार्थों में फास्फोरस (p) जनन क्षमता को काफी प्रभावित करता है। एक व्यस्क गाय को प्रतिदिन 10-12 ग्राम फास्फोरस की आवश्यकता होती है।

कैल्सियम (Ca) की कमी से प्रजनन संबंधी कई समस्यें उत्पन्न होती है। पशु के शरीर में Ca : p का अनुपात 1.2 या अधिकतम 2.1 होना चाहिए।

आयोडिन (I) की कमी से प्रजनन संबंधी कई समस्याएं उत्पन्न होती है। जैसे नर में कामुकता की कमी तथा खराब गुण का वीर्य । यह संभवतः थाइराक्सिन हार्मोंस की कमी के कारण मेटाबोलिज्म में उत्पन्न गड़बड़ी से संबंधित है। इसकी कमी के समय से पहले, कमजोर या मरे हुए बच्चे पैदा होते हैं।

(v) विटामिन्स **(Vitamins)** :- विटामिन A की कमी से गर्भाशयी वातावरण गर्भ के लिए अनुपयुक्त हो जाती है। गर्भाशय में शुक्राणुओं के आगे बढ़ने तथा भ्रूण के प्रभावी पोषण के लिए उपयुक्त नहीं रह जाता है। विटामिन्स A की कमी या कैरोटीन की कमी से बच्चे (Calves) में जर्म इपीथीलियम का डिजनरेशन तथा गैमिटोजनेसिस की कमी होती है।

विटामिन्स C को गाय अपनी आवश्यकतानुसार स्वयं संश्लेशित कर लेती है।

विटामिन E की कमी से चूहे में नर व मादा दोने में प्रजनन क्षमता में भारी कमी आती है। इसकी कमी से फार्म पशुओं में नर में अक्रियाशील शुक्राणु पैदा होते हैं तथा साथ ही जननअंगों की वृद्धि भी कम होती है।

अन्य विटामिन्स B व K को जुगाली करने वाले पशु स्वयं अपनी आवश्यकतानुसार संश्लेशित करते हैं।

6. आनुवंशिक कारण (Genetic Causes) :- कभी-कभी पशुओं में बांझपन पैतृक गुणों के कारण भी हो जाता है। क्योंकि इनसे अंतरारचनात्मक असमानताएं उत्पन्न हो जाती है जैसे - जनन अंगो का विकसित न होना जो जींस के समान विभाजन न होने के कारण भी हो सकता है।

1- नर ड्रासोफिला जिसमें क्रोमोसोम अनुपस्थित है वह बाँझ होता है। ये सामान्य जैसे दिखते हैं।

2- घातक कारक और फ्रीमार्टिन दशा में पशु में बांझपन हो सकता है।

3- प्रसंस्करण (Hyridisation) से उत्पन्न संकट (Hybrid)बांझ होते हैं -

1. घोड़ी ♀ (x) गधा ♂

|

खच्चर (Mule) बांझ

2. घोड़ा ♂ x जेब्रा ♀

|

जेब्राइड (Zebroid)

4- श्वेत रोग ओसर रोग (White heifer disease) :- यह श्वेत रंग वाली ओसरो में जनन अंगों के विकास में एक गड़बड़ी है जिसमें मादा युवा पशु में योनि पर पतली झिल्ली पाया जाता है जिससे योनि का मुख बंद सा रहता है। यह प्रौढ़ होने पर नष्ट हो जाती है। परन्तु कभी-कभी कड़ी व मोटी हो जाती है। जिससे पशु समागम में बाधा उत्पन्न होती है। यह आनुवांशिक बीमारी मानी जाती है।

5- शिशन में तनाव में असमर्थता- यह रिट्रेक्टर मांसपेशी के कमजोर होने से होता है तथा यह दशा आनुवंशिक मानी जाती है।

6- मनोवैज्ञानिक कारण (Psychological causes) :- इस तरह का बांझपन पशुओं में बहुत कम ही होता है। लेकिन पशुओं के साथ निर्दयता से व्यवहार, ज्यादा मारमीट, कठोर प्रतिबंध व बुरे प्रबंध से उनकी जनन क्षमता पर प्रभाव पड़ता है। कुछ गाय हताश हो जाती हैं तथा साँड़ भी कभी-कभी संभोग नहीं करते हैं। ऐसा अक्सर-भय आदि के कारण भी होता है।

उपचार - पशु के साथ उचित व्यवहार करना चाहिए, उसकी देखभाल ठीक प्रकार से करें तथा दयापूर्ण दृष्टिकोण रखें।

7- प्रबंध संबंधी कारण :-पशु फार्म पर पशुओं के लिए पर्याप्त भवनों की व्यवस्था, पानी, रोशनी, बिजली यातायात की व्यवस्था, स्वास्थ्य सुविधायें होनी चाहिए। पर्याप्त तापक्रम, प्रकाश, वायु संचार, छाया तथा सुप्रबंध का पशु प्रजनन पर काफी अच्छा प्रभाव पड़ता है। गंदे, अंधेरे, बिना रोशनदान के, बिना ठीक वायु संचार के पशुशाला पशु की प्रजनन क्षमता का ह्रास करते हैं और साथ ही उनके स्वास्थ्य पर कुप्रभाव डालकर उनमें अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न करते हैं।

8- पर्यावरणीय कारण (Environmental causes) :- मौसम, तापक्रम (कम या अति ऊंचा होना), सूर्य का प्रकाश एवं जलवायु भी पशुओं की समागम की प्रवृत्ति एवं उनकी जनन क्षमता को प्रभावित करते हैं। इसी प्रकार प्रकाश का भी महत्व है। यदि भेड़ों को अधिक प्रकाश में रखा जाये तो वे शीघ्र ऋतुमयी (heat) हो जाती है।

9- अन्य कारण :- इसमें कई कारक जैसे- उम्र, मौसम, तापमान और प्रकाश आदि है। ये सभी कारक प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष अंतःस्रावी ग्रंथियों (Endocrine gland) के उत्पाद के स्रावित होने को प्रभावित करते हैं।

(i) उम्र (Age) :- गाय में 4 वर्ष तक उर्वरता (fertility) बढ़ती है जबकि 6 वर्ष तक उसी एक स्तर पर बनी रहती है। इसके बाद धीरे-धीरे घटती जाती है। जबकि नर पशु

सांड़ में 2-3 वर्ष तक उर्वरता बढ़ती है और इसके बाद धीरे-धीरे कम होती जाती है यह विदेशी नस्ल के गायों में पायी जाती है।

(ii) मौसम (Season) :- वर्ष के विभिन्न मौसमों में जैसे बसंत में उच्चतम प्रजनन क्षमता, मध्यम जाड़े में तथा सबसे कम प्रजनन क्षमता गर्मी व अत्यधिक ठंडे के दिनों में होती है। यहाँ तापक्रम सबसे महत्वपूर्ण कारक है।

(iii) तापक्रम (Temperature) :-तापक्रम प्रजनन क्षमता को निर्धारित करने वाला प्रमुख कारक है। उच्च तापक्रम से टेस्टिस अण्डकोष में नहीं आता है। इस अवस्था में शुक्राणु नहीं पैदा होते हैं। जिससे पशु में बांझपन उत्पन्न होता है।

(iv) प्रकाश :- यह गर्भधारण दर को प्रभावित करता है। भेड़ को प्रकाश में रखने समय से पूर्व ऋतुमयी होती है जबकि अंधेरे में देर से ऋतुमयी होती है।

5.3.4 बांझपन का निदान (Diagnosis) :-

रोग का पहचान पशु के इतिहास, लक्षणों तथा कारणों पर निर्भर होती है। अतः रोग के निदान के लिए पशु का संक्षिप्त पिछला जीवनकाल लेना चाहिए। साथ ही पशु की सामान्य परीक्षा तथा विशेष तौर पर जनन अंगो की परीक्षा करनी चाहिए।

1- पशु के इतिहास का ब्यौरा जैसे- असाधारण प्रसव, जेर का न गिरना, या देर से गिराना, अनियमित ऋतुमयी होना आदि जाना जा सकता है।

2- सामान्य परीक्षण में पशु का योनि स्राव (Vaginal secretion) जनन अंगो में असाधारणता, उसका स्वास्थ्य इत्यादि देखा जाता है। विशेष परीक्षा के लिए मलाशय तथा योनि में जीवाणु रहित चिकना हाथ डालकर जनन अंगों की भली-भांति जांच करके उनमें असाधारणता का पता लगाकर रोग का निदान किया जाता है। इस प्रकार की जांच से निम्नलिखित असाधारणता मिल सकती है-

(1) स्थायी कार्पस ल्यूटियम (Presistant corpusluteum)
(2) सिस्टिक ओवरी (Cystic Ovary)
(3) अमद ओवरी (Anestrus Ovary)
(4) योनिशोध (Vaginitis)
(5) गर्भाशय शोध (Metritis)
(6) गर्भाशय ग्रीवा शोध (Cervicitis)
(7) गर्भाशय में तनाव में कमी (Lack of tone in the uterus)
(8) छोटी ओवरी (Small ovary)
(9) योनि में सूजन (Inflammed Vagina)
(10) रसौली (Tumour) भगशोध,(Vulvitis)

3- माइक्रोस्कोपिक जांच (Microscopic test) - जीवाणु संक्रमण का परीक्षण करने के लिए।

5.3.5 उपचार व रोकथाम (Treatment and Prevention) :-

चूँकि बांझपन बहुत से कारणों से होता है इसलिए इनका कोई एक ठोस उपचार नहीं है। अतः रोकथाम के उपाय निम्नलिखित हैं।

(1) यदि पशु में यह रोग कुपोषण से है तो पशु को संतुलित आहार और पशु की उचित देख-रेख और प्रबंध।
(2) जनन रोगों का उपचार
(3) जीवाणु रहित यंत्रों का प्रयोग
(4) संदिग्ध पशु का अलगाव
(5) स्वस्थ सांड़ का वीर्य प्रयोग करना
(6) गर्भवती होने का परीक्षण करवाना (Pregnancy test)
(7) पशु के बारे में उचित लेखा-जोखा-ऋतुमयी होना, प्रजनन का बच्चा देने की तिथि आदि।
(8) पशु के ठीक समय पर गर्भाधान करना।
(9) समय-समय पर पशु का पशुचिकित्सक (Veterinarian) के जाँच कराना।
(10) संक्रामक गर्भपात (Brucellosis) की रोकथाम के लिए काटन स्ट्रेन-19 वैक्सीन का टीका लगवाना चाहिए।
(11) अधिक सावधानी के लिए सांड़ों के वीर्य में एन्टीबायोटिक्स का प्रयोग करना अधिक अच्छा है।

5.4 सारांश Summary :-

पशुओं का एक बड़ा भाग समय से गर्भधारण नहीं करता है जिससे वे उत्पादन भी नहीं करते हैं। कुछ पशु स्थायी तौर पर गर्भधारण के अयोग्य होते हैं। इसे बांझपन कहते हैं जबकि पहले वाली स्थिति अनुर्वरता (Unfertility) कहलाती है। अनुर्वरता और बांझपन की दशाएं उत्पन्न होने के कई कारण हैं - जैसे शारीरिक संरचनात्मक, रोगात्मक, आनुवंशिकी, शरीर, क्रियात्मक हार्मोंस का असंतुलन, पोषण, प्रबंध, पर्यावरणीय कारक, जननेंद्रिय रोग प्रमुख हैं। इन कारकों में से सभी पर तो नियंत्रण नहीं रखा जा सकता है। किन्तु कई कारकों जैसे-पोषण प्रबंध तथा रोगात्मक कारकों को नियंत्रित किया जा सकता है। जिससे इस समस्या की गंभीरता में काफी कमी की जा सकती है।

पशु को पर्याप्त, संतुलित आहार दिया जाना चाहिए। उसके साथ दयालुता का व्यवहार होना चाहिए। व्यर्थ का मार-पीट नहीं होना चाहिए। पशुओं का समय से विभिन्न रोगों के वैक्सीन का टीका अवश्य लगवाना चाहिये। गंभीर स्थिति में पशुचिकित्सक की सहायता लेनी चाहिए। पशुओं को स्वास्थायवर्द्धक, सूखे, साफ-सुथरे, स्थान पर रखना चाहिए। जहाँ वायु संचार की अच्छी व्यवस्था, छाया, पानी रोशनी आदि की आवश्यकता पड़ती है।

5.5 उपयोगी पुस्तकें

1. एनिमल जेनेटिक्स एण्ड ब्रीडिंग प्रैक्टिसेस – डा0 जगदीश प्रसाद।
   इण्टरनेशनल बुक डिस्ट्री ब्यूटिंग कम्पनी, लखनऊ
2. पशुपालन एवं पशु चिकित्सा विज्ञान - डा0 देवनारायण पाण्डेय।
3. टेक्सट बुक आफ एनिमल हस्बैन्ड्री - डा0 जी0 सी0 बनर्जी

5.6 संबंधित प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. बांझपन क्या है ? इसके प्रमुख कारण क्या हैं ?
2. शरीर रचनात्मक खराबी के कारण होने वाले बांझपन का वर्णन करें।
3. रोगात्मक कारणोवंश उत्पन्न होने वाले बांझपन का वर्णन करें।
4. शरीर क्रियात्मक खराबी के कारण बांझपन का वर्णन करें।

लघु उत्तरीय प्रश्न

टिप्पणी लिखे -

1. स्क्रोटल हार्निया
2. श्वेत ओसर रोग
3. फ्री मार्टिन
4. सी0ओ0डी0
5. ब्रुसेलोसिस
6. लेप्टोस्पाइरोसि
7. सिस्टिक ओवरी
8. बाँझपन के मनोवैज्ञानिक कारण

इकाई 6: कृत्रिम गर्भाधान

इकाई की रूपरेखा -

6.1 प्रस्तावना (Introduction)
6.2 उद्देश्य (Objectives)
6.3 कृत्रिम गर्भाधान (Artificial Insemination)
  6.3.1 परिभाषा
  6.3.2 कृत्रिम गर्भाधान का विकास
  6.3.3 लाभ एवं हानियां
  6.3.4 कृत्रिम गर्भाधान का क्षेत्र
  6.3.5 कृत्रिम गर्भाधान की सीमाएं
  6.3.6 कृत्रिम गर्भाधान की प्रविधि
    6.3.6.1 वीर्य एकत्रीकरण
    6.3.6.2 वीर्य परीक्षण तथा मूल्यांकन
    6.3.6.3 वीर्य तनुकरण
    6.3.6.4 वीर्य सुरक्षित रखना
    6.3.6.5 मादा का गर्भाधान
  6.3.7 यंत्रों का जीवाणु-हनन (Sterilization of A.I. Equipments)
6.4 सारांश
6.5 उपयोगी पुस्तकें
6.6 संबंधित प्रश्न

6.1 प्रस्तावना (Introduction)

पशु प्रजनन के क्षेत्र में क्रांतिकारी कदन कृत्रिम गर्भाधान सिद्ध हुआ है। यह पशु उन्नति की तीव्र व कम समय लेने वाली एक विधि है। पशु की आनुवंशिक उन्नति, प्रजनन प्रक्रिया में बदलाव लाकर नयी विधियों द्वारा किया जा सकता है। कृत्रिम गर्भाधान आनुवंशिक इंजीनियरिंग का प्रथम चरण कहा जा सकता है। इसने एक पशु की प्रजनन क्षमता में वृद्धि की इसके अगले चरण में क्लोनिंग तथा भ्रूण का स्थानान्तरण (ET-Emryo transfer) द्वारा पशु की आनुवंशिक सुधार के नये रास्ते खुले हैं जिससे पशुओं की प्रजनन क्षमता में काफी वृद्धि हुई है।

भारत में 80% जनता कृषि एवं पशु पालन पर निर्भर करती है यद्यपि भारत विश्व में दुग्ध उत्पादन में प्रथम स्थान पर है लेकिन प्रति पशु उत्पादकता काफी कम 987किग्रा-प्रति दुग्धकाल है जबकि विश्व औसत 2038 किग्रा / दुग्धकाल है। भारतीय पशुओं में कम उत्पादकता शताब्दियों से जारी धीरे-धीरे नस्लों में गिरावट के कारण है जिससे लगभग 80% गायें तथा 50% भैसें देशी, मिश्रित होती हैं तथा इनकी कोई निश्चित नस्ल नहीं रह पायी है। खराब

उर्वरता तथा चारे-दाने की कमी हमारे पशुओं को कम उत्पादकता के दूसरे कारण है।

वास्तव में भारत में अच्छे गाय-भैस के जर्मप्लाज्म उपलब्ध नहीं है। अच्छे गुणों वाले सांड़ 400, 3360 और 5400 की संख्या में क्रमशः संकर सांड़, देशी सांड़ तथा भैंस साड़ की और आवश्यकता है। जिससे 20% प्रजनन योग्य मादाएं कृत्रिम गर्भाधान के अंतर्गत आ सके। अतः कृत्रिम गर्भाधान द्वारा आनुवंशिक रूप से उत्तम गुणों वाले नरों व उनके वीर्य का प्रजनन के लिए उपयोग, निम्न कोटि के मादा में समागम (mating) तथा गर्भाधान द्वारा पशु का आनुवंशिक सुधार होने से पशु की उत्पादकता में अतिशीघ्र सुधार किया जा सकता है।

6.2 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई का उद्देश्य पशुपालकों को निम्नलिखित विषयों से संबंधित विस्तृत जानकारी उपलब्ध कराना है-

(1) कृत्रिम गर्भाधान का अर्थ

(2) कृत्रिम गर्भाधान से लाभ।

(3) कृत्रिम गर्भाधान हानियों की जानकारी।

(4) कृत्रिम गर्भादान की प्रविधि की ज्ञान

(5) इसकी आवश्यकतानुसार व बाधाएं

(6) कृत्रिम गर्भाधान के अपनाने में सावधानियाँ

(7) भारत में कृत्रिम गर्भाधान के पूर्णतः सफल न होने के कारणों का ज्ञान।

6.3 कृत्रिम गर्भाधान (Artificial Insemination-AI)

6.3.1 परिभाषा (Difenition) :-

नर पशुओं से वीर्य कृत्रिम विधियों से प्राप्त कर, प्रयोग में लाने के समय तक उचित ढंग से सुरक्षित रखकर एवं उसकी गर्भ धारण करने की शक्ति का परीक्षण करके वैसा ही पतला करके ऋतुमयी मादा के जनन अंगो में स्वच्छता पूर्वक उचित समय तथा उचित स्थान पर यंत्र द्वारा पहुँचाना ही कृत्रिम गर्भाधान या वीर्य सेचन कहलाता है।

6.3.2 कृत्रिम गर्भाधान के विकास का इतिहास :-

वर्ष	कृत्रिम गर्भाधान के क्षेत्र में विकास कार्य
1322	अरब के एक सेनाध्यक्ष ने अपनी थोड़ी को कृत्रिम गर्भाधान से गाभिन कराया।
1780	इटली के वैज्ञानिक (एल0 स्पैलन्जानी) ने कृत्रिम गर्भाधान कुतियों में अपनाया।

1982	डा0 पी0 रोजी ने0 प्रो0 ब्रांची को देखरेख में कार्य किया तथा एल0 स्पेलंजानी ने इनके कार्य को प्रमाणित किया।
19वीं शताब्दी	कृत्रिम गर्भाधान कार्य यूरोप तथा अमेरिका मे शुरू हुआ।
1889	इ0 आई0 इवेनआफ ने रूस में घोड़े में प्रजनन के लिए इस विधि को उत्तम बताया।
1909	रुस में प्रथम कृत्रिम गर्भाधान प्रयोगशाला की स्थापना हुई तथा इवेनआफ ही प्रथम व्यक्ति या जिसने गाय व भेड़ों में कृत्रिम गर्भाधान विधि द्वारा सफलता प्राप्त की।
1930	कृत्रिम योनि का आविष्कार हुआ।
1938	कृत्रिम गर्भाधान प्रक्रिया द्वारा रूस में 120000 गायें, 120000 घोड़ी तथा 150000 भेड़ों को गर्भित कराया गया।
1942	इस विधि को इंग्लैण्ड में प्रयोग किया गया है।
1934 - 96	अमेरिका में एवरेट मेलियास ने कुत्तों पर इस विधि को अपनाया।
1936	लूईस ने इस विधि को घोड़ियों पर अपनाया।
1938	ई0 जे0 पैरी ने कृत्रिम गर्भाधान क्रिया को अपनाया
1940-1950 के प्रारम्भ	वैज्ञानिक प्रकाशन तथा रिब्यू का प्रकाशन (इस विषय से संबंधित) इस समय के वैज्ञानिक हैमाण्ड, स्पैरी, सैलिसवरी, वैण्डमार्क, डेवेनपोर्ट, एंडरसन, कैसिडा और भट्टाचार्य इस कार्य से संबंधित रहे। कृत्रिम गर्भाधान (A.I.) गाय और भैसों में सफलतापूर्वक किया गया।

भारत में कृत्रिम गर्भाधान का विकास

1939	भारत में इस विधि को पैलेस डेयरी फार्म, मैसूर पर अपनाया गया।
1941	डा0 मिलन ने इस विधि को एग्रीकल्चर इंस्टीस्ट्यूट डेयरी फार्म, इलाहाबाद में प्रयोग किया गया।
1942	कृत्रिम, गर्भाधान पर भारतवर्ष के अंदर IVRI इज्जतनगर, बंगाल वेटरीनरी कालेज तथा IDRI, बंगलौर, पटना, वेटरीनरी कालेज पर काफी प्रयोग हुए।
1945-46	भिरारी डेयरी फार्म पर प्रयोग किया गया।
1946-47	इस विधि को बरेली में प्रयोग में लाया गया।

1948-49	लखनऊ के अंतर्गत भद्रक डेयरी फार्म पर AI अपनाया गया।
1949-50	कृत्रिम गर्भाधान विधि को देवरिया, गाजीपुर, आदि जिलों में अपनाया गया।
1951-52	प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951-56) में कृत्रिम गर्भाधान को 150 की-विलेज-स्कीम से जोड़ दिया गया।
1956-61	द्वितीय पंचवर्षीय योजना (1956-61) में 400 की-विलेज स्कीम में AI को अपनाया गया। वीर्य बैंक NDRI बंगलौर में स्थापित।
1966-67	सघन पशु विकास योजना (Intensive cattle development Programme) ICDP का प्रारम्भ। इस समय 134 ICDP इकाईयां काम कर रही हैं। - समन्वित अनुसंधान परियोजना (All - Indian Co-ordinated Research Projects) गाय, भैस पर शुरू किया गया। पुनः इसे बकरी, भेड़ तथा अन्य को शामिल किया।
1970's	भैसों में प्रजनन क्रार्यक्रम शुरू तथा गाय में संकर प्रजनन FAO, DANIDA, SIA, IBSDS, NDDB, BAIF जैसी एजेंसियां इन कार्यक्रमों में सहयोग किया।

देश में इस समय कृत्रिम गर्भाधान में फ्रोजेन सीमेन तकनीकी उपलब्ध है। देश में पशु विकास योजना (ICDP) के अंतर्गत इस समय निम्नलिखित केन्द्र कार्यरत हैं-

1.	आई0सी0डी0पी0	- 94
2.	के0बी0बी0 (की-विलेख स्कीम)	- 511 (जिसमें प्रत्येक ब्लाक के अंदर लगभग 6-10 के0वी यूनिट्स होती है।
3.	पशु-प्रजनन फार्म	- 94
4.	भैंस प्रजनन फार्म	- 51
5.	विदेशी पशु प्रजनन कार्य	- 184
6.	मिलेटरी फार्म	- 80
7.	गोशालायें	- 1000
8.	आपरेशन फ्लड	- जो 267 जिलों में लागू तथा 174 मिल्कशेड है जो 23 जिलों में थे भी कार्य में सम्मिलित/लगभग 10 मिलियन ली0 दूध का व्यवसाय 630000 गायों की दुग्ध सहकारिता द्वारा हो रहा है।

कार्यक्रम :- विभिन्न योजनाओं में निम्नलिखित कार्यक्रम अपनाये गये-

1. संकट प्रजनन द्वारा नियंत्रित प्रजनन।
2. चारों का विकास, समुचित प्रबंध तथा समुचित पोषण।
3. प्रभावी रोग नियंत्रण।
4. छोटे व गरीब किसानों के आर्थिक स्तर में सुधार तथा उनके आहार की पौष्टिकता बढ़ाना।
5. पशुधन का समुचित विकास।
6. प्रजनन के लिए अच्छा वीर्य उपलब्ध कराना।
7. किसानों के यहाँ पशु स्वास्थ्य रक्षा की सभी सुविधायें देना।

कृत्रिम गर्भाधान का उद्देश्य :- भारत में कृत्रिम गर्भाधान प्रणाली अपनाने का मुख्य उद्देश्य शीघ्रता से पशु सुधार करना और सीमित संख्या में अच्छे सांड़ होते हुए, अपने पशुओं का दुग्धोत्पादन बढ़ाना तथा कृषि कार्य के लिए अच्छे बैल पैदा करना।

6.3.3.1 कृत्रिम गर्भाधान के लाभ :- कृत्रिम गर्भाधान की पद्धति प्रजनन की ऐसी विधि है जिसके द्वारा गो-पशुओं के सुधार की दिशा में अपेक्षाकृत शीघ्र परिणाम प्राप्त किये जा सकते हैं। कृत्रिम गर्भाधान से निम्नलिखित लाभ है-

1. परीक्षण किये गये उत्तम साड़ों को अधिक समय तक प्रजनन के लिए प्रयोग कर सकते हैं।
2. बूढ़े, भारी, लगड़े या पंगु साड़ों के साथ प्रयोग में ला सकते हैं।
3. अच्छी नस्ल के सांड़ की कमी है उनसे इस विधि द्वारा अधिक संख्या में उत्तम संतति प्राप्त की जा सकती है। प्राकृतिक रूप से एक सांड़ से 50 गायें गर्भित की जा सकती है जबकि कृत्रिम गर्भाधान द्वारा एक सांड़ के वीर्य से वर्षभर में 1000 गायें गर्भित की जा सकती है।
4. इस विधि में उत्तम प्रकार के नर व मादा का एक दूसरे से दूर स्थान पर होते हुए भी उनका गर्भाधान कराया जा सकता है।
5. सांड़ों की संख्या में भारी कमी आ सकती है क्योंकि प्राकृतिक प्रजनन में एक साड़ 50-60 गायों के लिए होता है जबकि कृत्रिम गर्भाधान से लगभग 1000 गायें गर्भित की जा सकती है। इनके स्थान पर अच्छी देखरेख व प्रबंध से अधिक मूल्यवान सांड़ कम संख्या में रखे जा सकते हैं।
6. जनन अंगों के रोगों को फैलने से रोका जा सकता है।
7. गायों की गर्भित होने की संभावना अधिक होती है।
8. पशुओं में प्राकृतिक विधि से यदि गाभिन कराना मुश्किल है तो उन्हें कृत्रिम विधि से गर्भित किया जा सकता है।
9. नर व मादा के आकार व वजन की भिन्नता के कारण प्रजनन में होने वाली कठिनाइयों से बचा जा सकता है।
10. विधि लेखा-जोखा रखने में ज्यादा सहायक है।

11. छोटे पशुपालकों को सांड़ रखने की जरूरत नहीं है।
12. साड़ों की प्रजनन क्षमता का पता लगाकर जल्दी से परीक्षण किया जा सकता है।
13. पशु विकास में उन्नति शीघ्रता से की जा सकती है।
14. संकर प्रजनन व प्रसंकरण आसानी से किये जा सकते हैं।
15. गायों की प्रजनन क्षमता को भी ज्ञात करने में सहायक है।
16. आनुवंशिक सुधार में (प्रोवन) सिद्ध सांड़ के प्रयोग तथा संतति परीक्षण शीघ्रता से किया जा सकता है।
17. कृत्रिम गर्भाधान के विकास से कई उद्योगों जैसे इसके लिए यंत्र, सहायक सामग्रियों, संग्रह सामानों, वीर्य तनुकारों आदि विकसित हो सकते हैं। यह तकनीकी विकास तथा रोजगार के अवसरों को बढ़ाने में सहायक हो सकता है। कई फार्मर (किसान) अच्छे सांड़ों को रखकर उसके वीर्य को बेचकर लाभ कमा सकते हैं।
18. यूथ रिकार्ड और सांड़ सूचक को बनाना, सांड़ का विभिन्न तरीके से परीक्षण कार्य, उसकी आनुवंशिक तथा पोषण स्तर का अध्ययन, उसके वीर्य का सूक्ष्मदर्शी अध्ययन जैसे कार्य करने के लिए स्टाफ व प्रशिक्षित लोगों की आवश्यकता उत्पन्न होती है।
19. डेयरी उद्योग का तीव्र विकास क्योंकि कृत्रिम गर्भाधान में अच्छे सांड़ का वीर्य का उपयोग होने से दूध का उत्पादन बढ़ता है।
20. पशु के प्रजनन क्षमता में वृद्धि हो जाती है।

6.3.3.2 कृत्रिम गर्भाधान की कमियाँ (Demerits of A.I.) :-

(1) इसमें हमें प्रशिक्षित कर्मियों (Skilled workers) की आवश्यकता पड़ती है; जो कि ये पर्याप्त संख्या में उपलब्ध नहीं हो पाते हैं। तथा इन्हें ट्रेनिंग देने में धन भी खर्च होता है। यदि प्रशिक्षित व्यक्ति नहीं होगे तो बीमारियों के संक्रमण का भय, अच्छा से गर्भाधान न हो पाना तथा इससे संबंधी अन्य बीमारियाँ हो सकती है।

(2) एक संक्रमित, भली प्रकार से प्रिजर्व (Preserve) न किया वीर्य से न केवल उर्वरता प्रभावित होती है। बल्कि उससे संक्रमण का भय रहता है। अत्यन्त स्वच्छ तथा जीवाणु रहित दशा में ही वीर्य का संग्रहण, वितरण तथा गर्भाधान किया जाना चाहिए। जननेंद्रिय रोग वीर्य के द्वारा फैल सकते हैं। अच्छी प्रकार से संरक्षित (Preserve) न किया गया वीर्य शीघ्रता से संक्रमित हो जाता और संक्रमण का स्त्रोत हो सकता है।

(3) प्रजनन की कठिनाईयाँ (Breeding difficulties) :- यह एक सांड़ की प्रजनन क्षमता को तो बढ़ाती है लेकिन प्रजनन संबंधी कई अन्य समस्याओं का समाधान नहीं करती है। खराब संग्रहण, संरक्षण, यातायात तथा गाय के ऋतुमयी होने की सही जांच न होने से सांड़ की उर्वरता प्रभावित होती है।

(4) ऋतुमयी होने की पहचान :- सही ऋतुमयी होने की पहचान कृत्रिम गर्भाधान को सफल

बनाने के लिए अति आवश्यक है। सही समय पर गाय के गर्मी (heat) में आने की पहचान सांड़ अच्छी प्रकार कर लेता है। इसके लिए टीज़र का प्रयोग किया जा सकता है।

(5) खराब तकनीक (Poor Techniques) :- कृत्रिम योनि के बनाने, सांड़ की स्वच्छता तथा वीर्य तनुकरक के खराब गुण जैसे तकनीकी कारक वीर्य के गुणों को खराब कर सकते हैं। तकनीशियनों को वीर्य के मूल्यांकन तथा इसके तापक्रम तथा पी-एच0 को जानना चाहिए।

(6) आनुवंशिक समस्यायें (Genetic problems) :- कृत्रिम गर्भाधान में कुछ ही अच्छे सांड़ों की वीर्य का प्रयोग एक बहुत बड़ी संख्या में गायों के गर्भाधान में किया जाता है। इस प्रकार इससे अंतः प्रजनन का प्रभाव उत्पन्न हो सकता है। केवल एक गुण दूध के उत्पादन को अधिक ध्यान में रखा जाता है जबकि इसमें सुधार के साथ बीमारियों के प्रतिप्रतिरोध तथा प्रजनन क्षमता व स्थानीय वातावरण में ढलने के गुणों में की समस्यायें उत्पन्न होते हैं।

(7) संक्रमण (Infections) :- वीर्य के संग्रहण, वितरण तथा संरक्षण के समय किसी भी प्रकार की कमी होने से वीर्य संक्रमित हो जाता है। यंत्रों के भली-प्रकार साफ व निर्जामित (Stirile) न होने से वीर्य संक्रमित हो जाता है जिससे नर व मादा दोनों ही जननेंद्रिय रोग से संक्रमित हो जाते है। थोड़ी सी लापरवाही होने से अच्छे प्रजनन के स्थान पर दूषित प्रजनन हो जाता है।

(8) इस विधि में प्रयुक्त होने वाला सामान काफी मूल्यवान होता है।

(9) गायों के ऋतुमयी (heat) को जानने के लिए काफी ज्ञान, प्रशिक्षण एवं समय की आवश्यकता होती है और यदि भली-भाँति इसकी परीक्षा न हो पायी तो इस विधि से आशातीत परिणाम भी नहीं निकलते हैं।

6.3.4 कृत्रिम गभार्धान का क्षेत्र (Scope of A.I.) :-

भारत में दूध का उत्पादन राष्ट्रीय स्तर बढ़ाने, प्रति पशु उत्पादकता में वृद्धि करने तथा पशुओं के आनुवंशिक संरचना में सुधार करने के लिए अच्छे सिद्ध सांड़ों (proven bull) की बहुत बड़ी संख्या में आवश्यकता होती है। लेकिन इतनी अधिक संख्या में सांड़ों का मिल पाना काफी कठिन है तथा अच्छे सांड़ो की पहले ही कमी है। अतः इस कमी को दूर करने के लिए कृत्रिम गर्भाधान अपनाया गया है।

6.3.5 भारत में कृत्रिम गर्भाधान की परिसीमायें (Limitations of A.I.) :-

(i) प्रशिक्षित, योग्य एवं अनुभवी व्यक्ति की कमी।

(ii) कृत्रिम गर्भाधान केन्द्रों पर वीर्य का खराब रखरखाव तथा वहाँ होने वाली असुविधा इस कार्य की प्रगति में सबसे बड़ी बाधा है। बहुत कम पशु चिकित्सक इस कार्य में पूरी रूचि लेते हैं।

(iii) वीर्य को गाय की योनि में डालने का कार्य डाक्टर द्वारा न करके परिचारकों द्वारा किया जाता है।

इसमें प्रयोग होने वाले मंत्रों को भली-भांति सफाई व जीवाणु रहित नहीं किया जाता है और ठण्डे पानी से धोकर, अन्य गायों का इससे गर्भाधान कराया जाता है।

(iv) इसमें प्रयोग होने वाले यंन्त्रों को भली-भाँति सफाई व जीवाणु रहित नहीं किया जाता है और ठण्डे पानी से धोकर, अन्य गायों का इससे गर्भाधान कराया जाता है।

(v) मृत शुक्राणुओं वाले वीर्य द्वारा गर्भाधान की शिकायत भी मिली है। ऐसी दशा में गाय को तरह-तरह के जननेद्रिय रोग लग जाते हैं।

(vi) वीर्य का खराब संग्रहण, संरक्षण तथा यातापात। वीर्य के परिवहन के समय प्रतिकूल वातावरण।

(vii) अनुपयोगी नर पशुओं का वध तथा देशी सांड़ों को बधिया करने धार्मिक अवरोध।

(viii) समुचित देखभाल की कमी।

(ix) कृत्रिम गर्भाधान में प्रयोग होने वाली वस्तुएँ मंहगी है जिन्हें औसत श्रेणी का पशुपालक नहीं वहन कर सकता है।

कृत्रिम गर्भाधान को सफल बनाने के लिए उपाय (Measures Adopted for AI success) :- देश में कृत्रिम गर्भाधान को भविष्य में सफल बनाने के लिए निम्नलिखित उपायों पर ध्यान देना चाहिए-

(i) मादा पशु को ऋतुमयी होने पर निश्चित समय पर कृत्रिम गर्भाधान केन्द्र पर ले जाया जाय।

(ii) वीर्य की दशा, शुक्राणु, नस्ल, तिथि, समय आदि का पूर्ण अभिलेख रखा जाय।

(iii) ऋतुमयी होने में संदेह होने पर मांदा की योनि-वीक्षण (Vaginal speculum) द्वारा परीक्षा की जाय।

(iv) इस प्रकार पैदा हुई उन्नतशील बधियों को, बड़े होने पर पुनः उन्नत एवं सिद्ध साँड़ों के वीर्य से गर्भित कराया जाये।

(v) देशी साँड़ों को बछिया किया जाये ताकि वे प्राकृतिक प्रजनन करके गाँव की नस्ल को खराब न कर सकें।

(vi) अनुपयोगी पशु गौ-सदन भेजे जाये।

(vii) लोकप्रियता के लिए इस विधि का समुचित प्रचार किया जाये।

6.3.6 कृत्रिम गर्भाधान प्रविधि (Process of A.I.)

इसमें निम्नलिखित प्रक्रिया सम्मिलित है-

1. वीर्य एकत्रीकरण (Collection of Semen)
2. वीर्य परीक्षण तथा मूल्यांकन (Examination of semen)
3. वीर्य तनुकरण (Dilutionof semen)
4. वीर्य सुरक्षित रखना (Preservation of diluted semen)
5. मादा का गर्भाधान (Insemination of Females)

6.3.6.1 वीर्य एकत्रीकरण (Collection of semen) :-

वीर्य एकत्रीकरण की विधियाँ निम्नलिखित हैं-

1. वीर्य बर्तन संग्रह विधि (Pan collection methods)
2. स्पंज विधि (Sponege method)
3. योनि चम्मच विधियाँ (Vaginal spoon method)
4. चूषण विधि (Sperm aspiratory method)
5. शुक्राणु कलेक्टर विधि (Sperm collector method)
6. प्रजनक थैली विधि (Breeder's bag method)
7. मर्दन विधि (Manipulation method)
8. विद्युत उद्दीपन विधि (Electro-ejaculation method)
9. कृत्रिम योनि विधि (Artificial Vagina method) :-

इनमें सभी विधियों में सबसे उत्तम तथा वैज्ञानिक विधि कृत्रिम योनि विधि ही है और आजकल आमतौर पर प्रचलित भी है। अतः इसका ही वर्णन किया जा रहा है-

कृत्रिम योनि विधि (Artificial vagina method) :-

(1) कृत्रिम योनि की बनावट (Structure of A.V.) :- गायों के लिए प्रयुक्त होने वाली कृत्रिम योनि के निम्नलिखित चार भाग होते हैं-

(a) बाह्य मोटी रबर का बना हुआ सिलेण्डर।

(b) भीतरी लैटेक्स लाइनर।

(c) लेटेक्स कोन।

(d) वीर्य एकत्र करने वाली नली।

(a) बाह्य मोटी रबर का बना हुआ सिलिण्डर (Outer Thick Rubber Cylinder) :- यह मोटी रबर का बना हुआ 40 सेमी लम्बा तथा 7 सेमी भीतरी व्यास का खोखला सिलिण्डर होता है। इसके दोनों किनारे शेष भाग से कुछ मोटे तथा ऊपर उठे हुए होते हैं। एक सिरे से लगभग 7-8 सेमी की दूरी पर एक छिद्र होता है जो वाल्व तथा धातु के स्क्रू (Screw) से बंद रहता है और आवश्यकता पड़ने पर खोला जा सकता है।

(b) भीतरी लैटेक्स लाइनर (Inner Latex Liner) :- एक पतली रबर का प्लास्टिक का बना हुआ लचीला खोखला सिलिण्डर है। इसकी लम्बाई बाह्य मोटे सिलिण्डर से लगभग 10-12 सेमी अधिक तथा व्यास लगभग उतना ही होता है-

(c) लैटेक्स कोन (Latex cone) :- एक बड़ी कीप की आकार की पतली रबर का बना होता है। इसका चौड़ा मुँह बाह्य सिलिण्डर के स्क्रू वाले सिरे पर चढ़ाया जाता है तथा पतले मुँह में वीर्य एकत्र करने वाली लगायी जाती है।

(d) वीर्य एकत्र करने वाली नली (Semen collecting vail) :- यह काँच अथवा, प्लास्टिक की बनी हुई परखनली के आकार की होती है। इसमें 10 घ0 सेमी0 तक चिन्ह अंकित होते हैं ताकि संग्रह किये वीर्य की मात्रा ज्ञात की जा सके।

(e) अन्य सहायक परन्तु आवश्यक तंत्र :- लुब्रीकेटिंग हस्त की छड़, कीप व ब्रुश, स्केपुल्स, सिरिंज, वीर्य सेचन नली।

कृत्रिम योनि को तैयार करना (Preparation of A.V.) :- वीर्य संग्रह करने के लिए कृत्रिम योनि के सभी भागों को खोलकर साबुन से साफ करके गर्मपानी से धोकर जीवाणु रहित कर लिया जाता है। तब भीतरी लैटेक्स लाइनर को बाह्य सिलिण्डर में डालकर दोनों सिरों पर चढ़ा देते हैं। वीर्य प्राप्ति शंकु के चौड़े सिरे को बाह्य सिलिण्डर के स्क्रू वाले सिरे पर लैटेक्स कोन चढ़ा देते हैं जिसमें कि दूसरी सिरे पर वीर्य संग्रह नलिका (Semen - collection vial) लगा देते हैं। टोटी के रास्ते 42^0C तक गर्म पानी भर देते हैं अब एक स्वच्छ जीवाणु रहित कांच की छड़ (Lubricating rod of glass) से कृत्रिम योनि के अंदर वैसलिन या ग्लिसरीन या जीवाणु रहित चिकना पदार्थ लगा देते हैं। योनि के खुले मुख से थर्मामीटर प्रविष्ट करके कृत्रिम योनी का तापक्रम देखते हैं जो वीर्य एकत्रित करते समय 39^0C होना चाहिए। फिर यदि कम तापक्रम है तो और अधिक गर्म पानी भर देते हैं तथा यदि तापक्रम अधिक हो तो, कुछ देर के लिए उसे रख देते हैं या ठण्डा पानी मिलाकर ठीक कर सकते हैं। इस प्रकार बनी हुई कृत्रिम योनि वीर्य एकत्रित करने के लिए बिल्कुल तैयार होती है। फिर पूरी योनि को इन्सूलेटिक थैली से ढककर रखते हैं ताकि वीर्य को प्रकाश से दूर रखा जा सके। साथ ही योनि का तापक्रम शीघ्रता से कम न होने पाये।

कृत्रिम योनि से वीर्य का संग्रह (Semen Collection) :- प्रजनन केन्द्र में गाय (जो ऋतुमय न हो) या उसके पुतले (Dummy Cow) को खड़ा करते है। सांड़ को लैंगिक उत्तेजना के लिए गाय के पास लाया जाता है। वीर्य एकत्रित करने के लिए प्रजनन क्रेट में खड़ी मादा या डमी के पीछे जाकर थोड़ा उसके बाई ओर खड़ा होते हैं। उपर्युक्त प्रकार से तैयार की हुई कृत्रिम योनि को बायें हाथ में पृथ्वी के धरातल में 45^0C का कोण बनाते हुए कसकर इस प्रकार पकड़ते हैं कि उसका खुला मुख सांड के लिंग की ओर रहे। अब साँड़ को मादा या डमी पर छोड़ते हैं। जैसे ही सांड़ मादा पर चढ़ता है, दाहिने हाथ से उसके मुतान (Sheath) को पकड़कर लिंग को कृत्रिम योनि के मुख में प्रविष्ट कर देते हैं। सांड़ तुरन्त ही कृत्रिम योनि को प्राकृतिक योनि के समान ताप व दाब होने से वीर्य स्खलित कर देता है। पूरा वीर्य नलिका में एकत्र हो जाता है। सांड़ के मादा के ऊपर से उतरते ही कृत्रिम योनि को शीघ्र ही लिंग से अलग कर लिया जाता है। वीर्य संग्रह नलिका को लैटेक्स कोन से अलग करके उसे बंद करके परीक्षण हेतु प्रयोगशाला में लाने के लिए 39^0C वाले पानी के अंदर रखकर लाया जाता है। कृत्रिम योनि के सब भागों को खोलकर, साफ करके सुखा लेते हैं।

कृत्रिम योनि के गर्म पानी के सम्पर्क में एकत्रित किये हुए वीर्य को अधिक समय तक नहीं रखना चाहिए क्योंकि अधिक तापमान के कारण शुक्राणु कम समय तक जीवित रहते हैं। सूर्य का तथा पैराबैंगनी किरणें भी शुक्राणुओं पर ऐसा ही प्रभाव डालती है। अतः इनसे भी बचना चाहिए।

कृत्रिम योनि विधि के लाभ (Advantages of A.V.) :-

1. वीर्य में बाह्य पदार्थों जैसे धूल, मिट्टी, मूत्र मिलने से रोका जा सकता है।
2. वीर्य शुद्ध एवं सम्पूर्ण मात्रा में प्राप्त होता है।
3. प्रजनन रोग फैलने का भय कम रहता है।

4. ऋतुमय गाय की आवश्यकता नहीं चूँकि गाय (बनावटी) द्वारा भी वीर्य संग्रह किया जा सकता है।
5. शुक्राणु अधिक प्रतिशतता में जीवित रहते हैं।
6. विधि सरल तथा वैज्ञानिक है।
7. मादा को कोई हानि नहीं होती है।
8. योनि का स्राव मिलकर वीर्य को दूषित नहीं करता है।
9. वीर्य में जीवाणु (bacteria) का प्रवेश (Contamination) कम होता है।
10. साधारण व्यक्ति भी वीर्य संग्रह कर सकता है।
11. समय कम लगता है।

कृत्रिम योनि की कमियाँ (Limitation of A.V.) :-

1. कभी-कभी सांड़ वीर्य देने में परेशानी करता है।
2. इसके पानी तथा अंदर का तापमान अधिक होने से सांड़ के शिश्न को क्षति हो सकती है।
3. व्यक्ति को प्रशिक्षित होना अनिवार्य है।
4. योनि का सामान व उपकरण महंगा होना।

कृत्रिम योनि द्वारा वीर्य एकत्रीकरण में सावधानियाँ :-

1. कृत्रिम योनि का तापक्रम गाय के शरीर से लगभग 1^0C ज्यादा हो।
2. गाय व सांड़ के साथ मृदुल व्यवहार।
3. सांड़, गाय तथा उपयोग की जाने वाली जगह की सफाई करना।
4. एकत्रीकरण प्रजनन क्रेट में हो।
5. फर्श चिकना नहीं होना चाहिए अन्यथा पशु के फिसलने की संभावना रहेगी
6. सांड़ को बुलस्टाफ से नियंत्रित करें।

6.3.6.2 वीर्य का परीक्षण एंव मूल्यांकन (Examination and Evaluation of semen)

(A) स्थूल परीक्षण (Macroscopic and Physical tests)

(B) सूक्ष्मदर्शीय परीक्षण (Microscopic tests)

(C) जीवाणु परीक्षण (Bacterial Examination)

(D) रासायनिक परीक्षण (Chemical tests)

(A) स्थूल परीक्षण (Macroscopic tests)

1. आयतन (Volume) :- सांड़ के वीर्य का आयतन चिन्हित नलिका या पिपेट अथवा सिलिण्डर द्वारा ज्ञात किया जाता है। विभिन्न पशु में वीर्य का औसतन सामान्य आयतन-

सांड़ - 5 मिली0

भैसा साँड़	-	3.0 मिली0
घोड़ा	-	100 मिली0
सुअर	-	200 मिली0
बकरा, भेड़ा	-	0.8 मिली0
मुर्गा	-	0.6 मिली0

वीर्य आयतन पर प्रभाव डालने वाले कारक -

1- वर्ग 2- जाति 3- साँड़ की आयु 4. मौसम 5. पोषण तथा प्रबंधन 6. वीर्य एकत्रिकरण की विथि।

2. रंग (Colour) :-

(i)	सामान्य वीर्य का रंग	-	सामान्य वीर्य का रंग हल्का क्रम (Light Creamy)
(ii)	असामान्य रंग	-	यह वीर्य की खराबी को दर्शाता है।
(a)	पीला (Yellow)	-	वीर्य में पेशाब या पस मिला है। इसे यूरोस्पर्मिया कहते हैं।
(b)	लाल (Red)	-	वीर्य में रक्त मिला है। इसे हिमोस्पर्मिया कहते हैं।
(c)	बदामी (Brown)	-	वीर्य में पुराने रक्त का सम्मिश्रण है। इसे भी हिमोस्पर्मिया कहते हैं।
(d)	हल्का हरा (Greenish)	-	इसमें मवाद का मिश्रण है। इसे पायोस्पर्मिया कहते हैं।

3. वीर्य का गाढ़ापन :- वीर्य के गाढ़ेपन के आधार पर निम्नलिखित श्रेणी में वर्गीकृत किया जाता है।

गाढ़ापन	वीर्य की श्रेणी
गाढ़ा क्रीम जैसा (Thick Creamy)	सर्वोत्तम (Excellent)
पतला क्रीम की तरह (Thin Creamy)	बहुत अच्छा (Very good)
गाढ़ा दूध जैसा (Thick Milky)	अच्छा (Good)
पतला दूध की तरह (Thin Milky)	संतोषप्रद (Fair)
पानी जैसा (Watery)	खराब (Extremely poor)

4. आपेक्षित घनत्व (Specific gravity) :- यह वीर्य में शुक्राणुओं की संख्या पर निर्भर करता है। सामान्यतः सांड़ के वीर्य का आ0घ0 1.035 होता है।

5. हिमांक अवनमन :- यह भी शुक्राणुओं की संख्या पर निर्भर करता है। सामान्यतया विभिन्न पशु के वीर्य का हिमांक निम्न है-

साँड़	-	0.73°C
भेड़	-	0.55°C
बकरा	-	0.65°C

6. पी0एच0 (pH) :- विभिन्न पशुओं के वीर्य का स्थूल परीक्षण **(PH)** निम्नलिखित सारणी में स्पष्ट है।

पशु जाति	आयतन प्रति स्खलन (घ0से0)	पी0 एच0
गौ-साड़	3.5 - 5.7	6.8 (6.5-7.5)
भैसा सांड्	2.5 - 3.5	6.8 (6.5-7.5)
मेढ़ा, बकरा	0.8 - 1.0	6.2 - 6.8
सुअर	200	6.8 - 7.2
घोड़ा	100	7.0 - 7.8
खरगोश	0.70	6.8 - 7.5
कुत्ता	0.70	----

7. विद्युत चालकता :- सांड़ - 89.5, भेड़ा - 48.5 - 80.5 तथा घोड़ा - 110.3 to 129.5 ohms x 10^{-4}, 25^0C पर

B. सूक्ष्मदर्शी परीक्षण (Microscopic Tests) :- इसमें इकाई आयतन में शुक्राणुओं की संख्या ज्ञात की जाती है। जो एक कांच की स्लाइड जिसे हिमोसाइटोमीटर कहते हैं के द्वारा ज्ञात करते हैं। इसमें बीच में आमने-सामने दो चैम्बर होते हैं। प्रत्येक चैम्बर 25 छोटे भागों में बंटा होता है और प्रत्येक में 16 छोटो भागों में बंटा होता है और प्रत्येक का क्षेत्रफल 1/400 वर्ग मि0मी0 होता है और पूरे चैम्बर के ऊपर रखी गयी कवर ग्लास की 1/10 मिमी0 होता है। ये 16 वर्ग पुनः 256 छोटे वर्ग होते हैं। प्रत्येक छोटे वर्ग का आयतन 1/4000 घन मिमी0 होता है। शुक्राणुओं की निम्नलिखित सूत्र से ज्ञात कर सकते हैं-

$$\text{शुक्राणुओं की संख्या (प्रति घन से0मी0 वीर्य में)} = \frac{\text{शुक्राणुओं की गणना} \times 4000 \times \text{घोलक दर} \times 100}{\text{गणना किये गये वर्गों की संख्या}}$$

विधि :- 0.02% इयोसीन घोल को 9.9 मिली0 सामान्य विलयन में एक परखनली में लेते हैं। 0.1 मिली0 लेकर दूसरी जिसमें 9.0 मिली0 सामान्य विलयन (इयोसीन युक्त) में डालकर मिलाते हैं यह 1:1000 का तनु बन जाता है। इसे सूक्ष्मपिपेट की सहायता से हिमोसाइटोमीटर चैम्बर को चार्ज इस प्रकार धीरे से करते हैं इसमें कोई हवा कोई बुलबुला न रह जाय। सूक्ष्मदर्शी द्वारा 5 बड़े वर्गो में उपस्थित शुक्राणुओं की गणना करते हैं।

सामान्य विलियन - 0.9% और 0.9% मरक्यूरिक क्लोराइड। वीर्य में शुक्राणुओं की सामान्य सांद्रता इस प्रकार है-

भारतीय गोवंशीय सांड़ = 0.8 से 1.72 मिलियन प्रति घन से0मी0 वीर्य में

विदेशी गोवंशीय साँड़ = 1.15 से '' '' '' ''

भारतीय भैंसा / साँड़ = 0.70 से 1.14 '' '' ''

2. शुक्राणुओं की गतिशीलता ज्ञात करना (Determination of motility of sperms) :- इसके लिए वीर्य की एक बूंद साफ कांच की स्लाइड पर रखकर सूक्ष्मदर्शी द्वारा देखते हैं तो लहर जैसी इनकी गतिशीलता मालूम पड़ती है। इससे इनकी गतिशीलता का अनुमान लगाया जाता है। यह गतिशीलता तीन प्रकार की होती है-

1. घूर्णन गति (Rotatory motion) :- इसमें शुक्राणु वृत रूप से घूमते जान पड़ते हैं।

2. प्रगामी गति (Progressive motion) :- इसमें आगे की ओर तेजी से बढ़ते हैं।

3. दोलन गति (Oscillatory Movement):- इसमें शुक्राणु एक स्थान पर हिलते-डुलते जान पड़ते हैं।

इन तीनों में प्रगामी गति सर्वोत्तम मानी जाती है और गतिशीलता के आधार पर वीर्य को निम्नलिखित श्रेणी में वर्गीकृत किया गया है।

गतिशीलता	वीर्य की श्रेणी
80% से अधिक गतिशील शुक्राणु	+ + + + +
80 - 60% तक गतिशील शुक्राणु	+ + + +
40-60% तक गतिशील शुक्राणु	+ + +
30-40% तक गतिशील शुक्राणु	+ +
10-20% तक गतिशील शुक्राणु	+
कोई गतिशील शुक्राणु नहीं	0

3. मृतक एवं जीवित शुक्राणु की गणना (Dead and Live count /differential count) :- 5 बूंद इयोसीन 5% + 20 बूंद नाइग्रोसीन (10%) पर मिश्रित कर, इसे स्लाइड पर रखकर,(एक बूंद) वीर्य को मिलाये । सूक्ष्मदर्शी की सहायता से गणना करे और लगभग 20 बार विभिन्न क्षेत्रों देखते हैं।

अभिरंजको के साथ शुक्राणुओं का सम्पर्क रखने का समय तथा तापक्रम इसमें अत्यन्त महत्वपूर्ण है। जीवित शुक्राणु का रंग अपरिवर्तित होता है जबकि मृत शुक्राणुओं का अवलोकन करने के बाद औसत निकालकर निम्न सूत्र से गणना करते हैं-

$$\text{जीवित शुक्राणुों का प्रतिशत} = \frac{\text{जीवित शुक्राणुओं की संख्या}}{\text{कुल शुक्राणु की संख्या}} \times 100$$

मृत शुक्राणुओं का प्रतिशत = 100- जीवित शुक्राणु का प्रतिशत

4. शुक्राणुओं की असामान्यतया की गणना (Sprem Abnormality count) :- शुक्राणु की असमान्यतायें निम्न प्रकार की होती है-

(1) सिर का असामान्य होना (Head abnormalities) :- छोटा सिर (micro head) बड़ा सिर (Mega head) दो सिर (twin-head) सिकुड़ा (shrunken) टूटा (Broken) तथा चपटा सिर (peared head).

(2) गर्दन का असामान्य होना (Neck anormalities):- टूट (Broken neck) निर्बल गर्दन (weak neck) आदि।

(3) मध्य भाग में असामान्यतायें (Middle piece abnormalities) :- दानेदार (Beaded), छोटा (small) टूटा हुआ (Broken)।

(4) पूँछ में असामान्यताएं (Tail abnormalities) :-दो पूंछ (Twin), मुड़ी होना (bent), कुण्डलाकार (Coiled) टूटी होना (Broken) पूंछ रहित (Tail less) आदि।

विधि - वीर्य को 3% सोडियम साइट्रेट डीहाइड्रेट घोल के साथ 1:10 तक तनु कर ले। इस वीर्य की एक बूद लेकर स्लाइड पर रखकर पतली तह में फैलाते हैं। इस पर रोज बंगाल (Rose) बंगाल अभिरंजक डालकर 15 मि0 रखे। सूक्ष्मदर्शी से शुक्राणुओं क असामान्यता की गणना करे।

परिणाम -

$$\text{असामान्य का प्रतिशत} = \frac{\text{असामान्य शुक्राणुओं की संख्या}}{\text{कुल सामान्य एवं असामान्य शुक्राणुओं की संख्या}} \times 100$$

1- यदि वीर्य 15-20% से अधिक शुक्राणु असामान्य हो तो प्रयोग नहीं करना चाहिए।

(C) जीवाणु परीक्षण (Bacterial Examination) :- वीर्य एकत्रीकरण की तिथि, स्वच्छता सावधानियाँ इत्यादि पर वीर्य में जीवाणु की उपस्थिति निर्भर करती हैं और अनियमितताओं तथा प्रदूषण युक्त वातावरण के कारण वीर्य दूषित हो जाता है। स्वच्छता व आदर्श अवस्थाओं में एकत्र किये हुए वीर्य में भी जीवाणु पाये जाते हैं। इनकी संख्या प्रति मिली0 100 से 900000 होती है। इनमें मुख्य रूप से डिथिराइड्स स्टेफिलोकोकाई जीवाणु होते हैं। स्यूडोमोनास तथा ई-कोलाई भी प्रायः पाये जाते हैं। इनकी उपस्थिति के कारण जहरीले पदार्थ (Toxins)पैदा करते हैं। इनसे न केवल शुक्राणुओं का जीवनकाल प्रभावित होता है अपितु जनन अंगों के रोग भी फैलते हैं।

स्टैण्डर्ड प्लेट काउण्ट द्वारा इनकी गणना की जा सकती है। मेकाकी अगार मिडियम कोलाई फार्म जीवाणु की उपस्थिति व संख्या का पता लगाया जा सकता है।

(D) रासायनिक परीक्षण (Chemical Examination) :-

1- एम0 बी0 आर0 परीक्षण (Methylene blue reduction test) :- मिथाइलिन ब्लू अवकरण जीवित शुक्राणुओं की संख्या तथा उसकी उपाचय क्रिया (Metabolic activity) पर निर्भर करता है। चूंकि उपाचपय क्रिया शुक्राणुओं द्वारा H^+ निकलते हैं जो आक्सीजन की अनुपस्थिति से मिथाइलिन ब्लू के पास जाकर अवकरण करते हैं। यदि प्रति यूनिट समय ज्यादा H^+ पैदा होते हैं तो अवकरण में कम समय लगता है जो जीवित क्रियाशील शुक्राणुओं की सांद्रता पर निर्भर करता है।

विधि - वीर्य को एग-योक साइट्रेट (Egg yoke citrate) को 1:4 के अनुपात में मिलाकर मिश्रित कर लेते हैं। एक मिली0 वीर्य को एक परखनली में लेते है और इसमें 0.1 मिली0 मिथाइलिन ब्लू का घोल डाल दे और धीरे-धीरे मिश्रित करें। इस मिश्रण के ऊपर खनिज तेल या पैराफीन द्रव की 0.1 सेमी- मोटी तह डाल दे। अब इस परखनली को उष्मक जलपात में (hat water bath) पर रखते हैं। 40.5^{0}C पर रखते हैं और समय-समय पर जांच कर देखते रहते हैं -

अवलोकन - अवकरण (Reduction) का समय -

	अवकरण (Reduction) का समय	वीर्य का वर्ग (Class of Semen)
1.	3-5 मिनट	उत्तम (Excellent)
2.	6 - 9 ”	औसत वीर्य (good)
3.	9 से अधिक	असंतोषजनक (Bad)

2. रिसेजुरीन अवकरण परीक्षण (Resazuring Reduction test) :- इसके लिए एक परखनली में 0.2 मिली0 ताजा वीर्य लेते हैं। इसमें 0.10 मिली0 रिसेजुरीन घोल डालकर धीरे से मिश्रित करते हैं। बाकी विधि मिथाइलीन ब्लू परीक्षण जैसी है।

	अवकरण (Reduction) का समय		वीर्य का वर्ग (Class of Semen)
1.	गुलाबी रंग	1 मिनट में	उत्तम (Excellent)
2.		4 मिनट	अच्छा वीर्य (Good)
3.		5.5 मिनट	औसत वीर्य (Fair)
4.		6 मिनट	असंतोषजनक (Bad)

3. **ब्रोमोथाइमोल ब्लू कैटलेज परीक्षण** (Bromothymal Blue catalase Test) :- जब वीर्य जीवाणु द्वारा रक्त या पीव द्वारा दूषित होता है इसमें कैटलेज एन्जाइम की मात्रा बढ़ जाती है, जो H_2O_2 को जोड़ता है। कैटलेज की मात्रा ज्ञात करके वीर्य का परीक्षण किया जाता है। सामान्य अच्छे वीर्य में इसका नम्बर 300 से कम ही होता है।

कैटेलेज नम्बर	वीर्य की किस्म
200 के कम	अच्छा वीर्य
200 - 300	सामान्य वीर्य
300 से 400	संदेहयुक्त
400 से अधिक	खराब

4. फ्रुक्टोलाइसिस (Fructolysis) :- वीर्य में सामान्यतः पाई जाने वाली शर्करा फ्रुक्टोज होती है जिसका शुक्राणुओं द्वारा उपयोग होता और उससे लैक्टिक अम्ल बनता है जिसे इंडेक्स द्वारा दर्शाते हैं। अतः फ्रुक्टोलाइसिस इंडेक्स फ्रुक्टोज की वह मि0ग्रा0 मात्रा है जिसका उपयोग या विघटन एक घंटे में 10^9 शुक्राणुओं द्वारा 37^0F पर हो जाता है। सांड़ के सामान्य वीर्य का यह सूचक्र 1-2 होता है जो शुक्राणुओं की गतिशीलता व सांद्रता पर निर्भर करता है।

5. पी0एच0 परीक्षण :- इससे वीर्य का अम्लीय तथा क्षारीय होना ज्ञात होता है। जो कि स्टैन्डर्ड पी0एच0 पेपर के रंग परिवर्तन सा मालूम होता है। विभिन्न पशुओं के वीर्य का पी0एच0 निम्न सारणी में दिया गया है-

पशु वर्ग	वीर्य का आयतन प्रति स्खलन (मिली)	शुक्राणुओं की सांद्रता (मिलियन /घन मिमी0)	पी0 एच0	जीवित जीवाणु (प्रतिशत)
साड़ (भारतीय)	3.5-5	0.73 - 1.72	6.8	76 - 80
(विदेशी)	5-6	0.8 - 1.388	6.8	71 - 78
भैसा साँड़	2.5 3.5	0.70 - 1.139	6.8	73 - 85
भेड़ा, बकरा	0.8 - 1.0	0.9 - 1.0	6.2-6.8	70 - 85
सुअर	200	0.08 - 0.120	6.8-7.2	70 - 75
घोड़ा	100	0.05 - 0.070	7.0-7.8	75 - 80

6.3.6.3 वीर्य तनुकरण (Dilution of semen) :-

वीर्य तनुकारक (Semen Dilutors or semen Extendors) :- ये वे कार्बनिक तरल पदार्थ है जो वीर्य का आयतन बढ़ाने के साथ ही साथ उसको अधिक समय सुरक्षित बनाये रखने में सहायता करते हैं।

(1) **वीर्य तनुकरण के मुख्य कार्य (Main Functions of Semen Dilution)** :-

(1) शुक्राणुओं की ओज (Vigour), गतिशीलता (Motility) तथा उर्वरता (Fertility) बनाये रखना।

(2) वीर्य का आयतन बढ़ाना ताकि अधिक पशुओं के लिए प्रयोग में लाया जा सके।

वीर्य तनुकारक के उपयोग के उद्देश्य (Objectives of using dilutor) :-

1. वीर्य का आयतन बढ़ाना ताकि अधिक पशुओं के लिए उपयोग हो।
2. शुक्राणुओं को जीवित बनाये रखना।
3. शुक्राणुओं को भोजन तत्व प्रदान करना।
4. वीर्य की क्षारीयता या अम्लता को बढ़ने से रोकना।
5. वातावरण में होने वाले परिवर्तनों (ठंडा, गर्म) से शुक्राणुओं की रक्षा करना।
6. हानिकारक जीवाणु से बचाव करना।
7. वीर्य का परासरणिक दबाव बनाये रखना।
8. शुक्राणुओं की ओज व गतिशीलता बनाये रखना। (Osmotic Pressure).

अच्छे वीर्य तनुकारकों की विशेषताएं (Desirable characteristics of semen dilutors):-

1- इसके पदार्थ सस्ते या कम मूल्य पर मिलने वाले हो ।

2- इसके पदार्थ आसानी से उपलब्ध हो।

3- इनके बनाने का ढंग सरल हो।

4- यह शीघ्रता से बनाया जाने वाला हो।

5- बनने के बाद इसमें स्थिरता हो अर्थात् स्वयं शीघ्र नष्ट न हो।

6- इसमें विषैले पदार्थ न मिले हो।

7- यह शुक्राणुओं को भोजन प्रदान करता हो।

8- यह शुक्राणुओं की ओज गतिशीलता तथा उर्वरता बनाये रखता हो।

9- शुक्राणुओं को बाह्य वातावरण के कुप्रभाव से बचाता हो।

10- इनका पारिसारक दबाव वीर्य से समान हो।

11- वीर्य के आयतन को बढ़ाता हो।

12- इसका तापक्रम वीर्य के समान हो।

13- इसका पी0एच0 शुक्राणुओं के अनुकूल हो।

14- अम्लीयता व क्षारीतयता को बढ़ाने से रोकता हो।

15- यह शुक्राणुओं के लिए हानिकारक न हो।

वीर्य तनुकारकों के प्रकार (Kinds of semen dilutors) :- मुख्य रूप से वीर्य को पतला करने के लिए निम्नलिखित तनुकारक प्रयुक्त होते हैं-

(1) अण्डपीत फास्फेट (Egg-Yolk Phosphate-Eyp)

(2) एग-योक साइट्रेट/अंडपीत साइट्रेट (Eggg -Yolk Citrate-EVC)

(3) अण्डपीत ग्लाइसीन (Egg Yalk Glycine-EYG)

(4) ट्रिस तनुकारक (Triss Dilutors)

(5) बाइकार्बोनेट तनुकारक (Bicarbonate Dilutors)

(6) दूध तनुकारक (Milk Dilutors)

(1) अण्डपीत फास्फेट (EYP) **:-** (फिलिप्स तथा लार्डो 1940)

पोटैशियम डाइहाइड्रोजन फास्फेट ($K_2H_2PO_4$) - 2ग्रा0

डाईसोडियम हाइड्रोजन फास्फेट (Na_2HPO_4) - 20 ग्रा0

आसवित जल - 1000 ग्रा0

आटोक्लेव में 20 मिनट तक 7 कि0 दबाव में रखकर गर्म करके जीवाणु रहित कर ले। इस घोल को ठंडा करके रेफ्रिडरेटर में स्टोर करते हैं। तनुकारक के रूप में प्रयोग के लिए इस घोल को तथा अण्डे की जर्दी को बराबर भागों में मिलायें। जिस अनुपात में वीर्य को पतला करना है, इस

तनुकारक को उसी अनुपात में वीर्य के साथ मिलाते हैं। इस तनुकारक में सांड़ के वीर्य को 4 दिन तक तथा भैसे के वीर्य को 2 दिन तक सुरक्षित रख सकते हैं।

2. **एग-योक साइट्रेट/अण्डपीत साइट्रेट (Egg - Yolk citrate-Eyc) :-**

सोडियम साइट्रेट डाईहाइड्रेट	- 1.40 ग्रा0	इस प्रतिरोधक के 80 मिली0 को 20 मिली0 अंडे की जर्दी के साथ मिलकर तनुकारक बनाये)
ग्लूकोज	- 1.25 ग्रा0	
ग्लाइसिन	- 3.93 ग्रा0	
सिस्टीन हाइड्रोक्लाराइट	- 0.125 ग्राम	
आसुत जल	- 100 मिली0	

इसको (भाप-सह पात्र) आटोक्लेव में 7 किग्रा0 दबाव पर 15 मिनट गर्म करें व ठंडा करके 5°C तापक्रम पर स्टोर करें इससे 4-7°C पर वीर्य को 72-96 घंटे तक सुरक्षित रख सकते हैं

3. **बाईकार्बोनेट तनुकारक :-**

पोटैशियम बाइकार्बोनेट	- 0.2	घोल - 10 भाग
सोडियम साइट्रेट डाइहाइड्रेट	- 0.3	घोल - 30 भाग
ग्लूकोज (आजलीय)	- 5.0	घोल - 30 भाग
फ्रुक्टोज	- 5.0	घोल - 10 भाग
अण्डपीत	-	20 भाग
पेन्सलीन व स्ट्रेप्टोसाइसीन	- 1.25	ग्रा0 प्रत्येक

4. **दुग्ध तनुकारक (Milk Dilutors)** :- दूध तनुकारक बनाने के लिए दूध को 90-95°C पर समांगीकृत दूध या पास्चुरीकृत सप्रेटा (Pasteurized skimmed milk) का प्रयोग किया जाता है। वीर्य को 50% तक पतला कर सकते हैं। इस वीर्य को 5°C पर 4 घंटे के लिए रखते हैं इसके बाद 20% ग्लिसरीन मिलाते हैं। यह वीर्य को अधिक समय तक सुरक्षित रखता है।

5. **तनुकारक :-** तोमर तथा देसाई (1961) द्वारा भैसा सांड़ के लिए मखनिया दूध का प्रयोग किया गया -

E_1 - गर्म किया हुआ सप्रेटा दूध	-	50 भाग
4% ग्लाइसिन घोल	-	25 भाग
अण्डपीत	-	25 भाग
E_2 - गर्म किया हुआ सप्रेटा दूध	-	60 भाग
5% फ्रुक्टोज घोल	-	20 भाग
अण्डपीत	-	20 भाग

6.3.6.4-वीर्य को सुरक्षित रखना (Semen Preservation) :- वीर्य का संरक्षण विभिन्न विधियों द्वारा किया जाता है-

(1) कमरे का तापक्रम पर (18^0 - 28^{0}C तक) वीर्य संरक्षण।

(2) प्रशीतन तापक्रम पर (5^{0}C) वीर्य संरक्षण।

(3) शून्य से नीचे के तापक्रम (-196^{0}C) पर वीर्य संग्रह संरक्षण

(1) कमरे के तापक्रम पर वीर्य संरक्षण

(i) आई0 वी0 टी0 **(IVT) - (Illinoi Variable Temperature Diluents)**

सोडियम साइट्रेट डाइहाइड्रेट	-	2 ग्रा0
सोडियम बाई कार्बोनेट	-	0.21ग्रा0
पोटैशियम क्लोराइड	-	0.04 ग्रा0
ग्लूकोज	-	0.30 ग्रा0
सल्फानिलेमाइड	-	0.30 ग्रा0
गर्म आसवित जल	-	100 मिली0
(उबला हुआ)		
पेंसिलीन	-	1 × 10^{15} आई यू0
स्ट्रेप्टोमाइसीन	-	1.10 ग्रा0

उपरोक्त घोल में विशुद्ध CO_2 गैस पास करके 10% अण्डपीत मिलाया जाता है और स्वच्छ एमप्यूलो (ampule) में सील बंद करके कमरे के तापक्रम (18-28^{0}C) पर रखते हैं। इससे वीर्य 6-7 दिन तक सुरक्षित रहता है।

नारियल दुग्धतनुकारक :-

नारियल का दूध	-	15 मि0ली0
सोडियम साइट्रेट डाइहाइड्रेट	-	2.2 ग्रा0
सल्फानिलोमाइ	-	0.3 ग्रा0
अण्डपीत	-	5.0 ग्रा0
आसवित जल	-	100 मि0ली0
डाइहाइड्रोस्ट्रेप्टो माइसिन सल्फेट	-	135 मि0ली0
पालीमिक्सिन वी0 सल्फेट	-	10 मि0ग्रा0
नीस्टेरिन	-	1000 यूनिट

जीवाणुरहित कैटलेज - 15000 यूनिट

इस तनुकारक से वीर्य 4 दिन तक 15-25^{0}C पर रखा जा सकता है।

(2) प्रशीतन तापक्रम (5^{0}C) पर वीर्य संरक्षण :-

वीर्य एकत्रीकरण के बाद वीर्य तथा तनुकारक दोनों को 20^{0}C पर हाट वाटर बाथ (hot water bath) पर रखते हैं और समान तापक्रम होने पर दोनों को सावधानीपूर्वक मिलाते हैं और जीवाणु रहित एम्पूलों में भरकर कागज या रूई में लपेटकर रेफ्रीजरेटर में 5^{0}C पर सुरक्षित रखते हैं।

(3) हिमिकरण या शून्य के नीचे तापक्रम पर वीर्य का संरक्षण -

इसमें तनुकारक मिले वीर्य को ठोस CO_2 द्वारा 79^{0}C पर या तरल नाइट्रोजन द्वारा -196^{0}C पर संग्रह किया जाता है। ऐसे वीर्य को हिमिकृत वीर्य कहते हैं। तनुकारक मिले वीर्य को पहले 5^{0}C प्रशीतन तापक्रम पर 4-5 घंटे रखा जाता है। गिलसराल (16%) को सोडियम साइट्रेट घोल (2.94% घोल) के साथ 50 प्रशीतन तापक्रम पर 1:1 अनुपात में मिलाया जाता है और इसमें स्ट्रेप्टोमाइसीन 0.5 मि0ग्रा0 प्रति मि0ली0 की दर से मिलायी जाती है। इसी प्रशीतन ताप पर ग्लिसराल मिले तनुकारक को तनुवीर्य में धीरे-धीरे सावधानी से मिलाकर 15-29 घंटे तक रखते हैं। इसके पश्चात् इसी ग्लिसराल मिले तनुवीर्य को एम्प्यूल में अथवा स्ट्रा में हिमिकरण के लिए पैक कर लिया जाता है। ग्लिसराल मिलाने के बाद से लेकर हिमिकरण तक के समय को ग्लिसराल इक्वीलिब्रियम समय (Glyceral Equilibrium time) कहते हैं अथवा ग्लिसराल साम्यावस्था / संतुलन समय कहते हैं।

वीर्य हिमिकरण के लाभ (Advantages of forzen semen) :-

1. पशुओं में वांछित नस्ल का आपस में सहवास (mating) करायें जा सकते हैं।
2. सिद्ध सांड़ का वीर्य कम से कम वर्ष भर उपयोग में लाया जा सकता है।
3. वर्तमान में प्रजनन के अयोग्य या मृत सांड़ से हिमिकृत वीर्य से उनकी संतान को पैदा किया जा सकता है।
4. हिमिकृत वीर्य को किसी भी जगह देश-विदेश में भेजा जा सकता है।
5. पूरा वीर्य सफलतापूर्वक प्रयोग में लाया जा सकता है।
6. परिवहन खर्च कम हो जाता है तथा वीर्य के गुणों पर कोई बुरा प्रभाव नहीं होता है।

हिमकृित वीर्य की कमियाँ (Disadvantages of forzen Semen) :-

1. शुक्राणुओं की कुछ संख्या (लगभग 30%) नष्ट हो सकती है।
2. उपकरण कीमती होते हैं।
3. लगभग 20% तक सांड़ों के वीर्य हिमीकृत (Frozen) किये जाने योग्य नहीं होता है।
4. यदि सांड़ पूरी तरह से स्वस्थ नहीं है तो हिमीकृत वीर्य से वायरल व जीवाणु बामारियाँ फैल

सकती हैं।

6.3.6.5. गाय के जननेद्रिय में वीर्य का संचालन (Insemination of the cow) :-

1. **गर्भाधान का समय (Time of Insemination) :-** गायों में यह समय गाय के ऋतुमय (heat) होने के समय के मध्य से इसके अंत तक के बीच में तथा भैसों में ऋतुमय के मध्य में गर्भधारण की दृष्टि से अच्छा रहता है। गर्भाधान के लिए उचित् समय विभिन्न पशुओं में भिन्न-भिन्न होता है। गाय व भैंस के लिए गर्म (heat) होने के घंटे बाद और (पुनः) गर्मी समाप्त होने के 7 घंटे पहले एक बार गर्भाधान होता है। इसे समय को विभिन्न पशुओं में आगे सारणी में दिखाया गया है-

2. **गर्भाधान के लिए वीर्य का आयतन एवं शुक्राणुओं की संख्या (Volume of Semen and Sperm count for Insemination)** :- कृत्रिम रूप से गाय - भैस को गर्भाधान करने के लिए लगभग 1 मि0ली0 जिसमें 5-10 लाख शुक्राणु हो पर्याप्त समझा जाता है। जबकि घोड़ों में यह लगभग 40 मि0ली0, सुअर में 100 मि0ली0 तथा भेड़ में 0.1 मि0ली0 होता है।

3. **गाय को गर्भाधान की विधियाँ (Method of Insemination) :-**उचित समय पर गाय को प्रजनन क्रेट में खड़ा करके उसके योनि, भग एवं अन्य निकट के भागों को साफ करके निम्न विधियों में से किसी एक के द्वारा गर्भाधान किया जाता है।

(1) रेक्टम योनि विधि (Recto vaginal or Hand per Rectum Method)

(2) योनि हस्त विधि (Hand in Vigina Method)

(3) योनि वीक्ष्ण यंत्र विधि (Vaginal Speculum Method)

(1) योनि हस्त विधि (Hand in Vigina Method) :- इसमें सर्वप्रथम दोनों हाथों को भली-भाँति साबुन से धोकर बायें हाथ को साबुन की झाग अथवा पैराफिन द्रव से चिकना कर दस्ताने पहन लेते हैं। अब इसे द्रव पैराफिन से चिकना करके योनि में डालते हैं और सरविक्स (Servix) को पकड़ते हैं। इसी हाथ के सहारे ही वीर्य सेचन नलिका को योनि में ग्रीवा के मध्य भाग में पहुँचाते हैं। अब सीरंज, जिसमें वीर्य पहले से भर लिया जाता है को रबर की छोटी सी नली (जो वीर्य सेचन नलिका पर लगी रहती हैः पर लगाते हैं तथा वीर्य को मादा के जनन अंग तक पहुँचा दिया जाता है।

यह विधि जब ज्यादा प्रचलित नहीं है। इसका कारण हाथ को योनि के डालने से योनि को क्षति पहुँचने का भय रहता है। अतः यह विधि उत्तम नहीं है।

(2) योनि वीक्ष्ण यंत्र विधि (Vaginal Speceulum Method) :- प्रथम विधि से यह विधि कुछ अधिक अच्छी है क्योंकि इसमें हाथ के स्थान पर योनि वीक्ष्ण यंत्र प्रयोग में लाया जाता है। इस यंत्र को साफ करके जीवाणुरहित करना जरूरी है अन्यथा रोग फैलने का भय रहता है और प्रत्येक पशु को गर्भाधान से पहले ऐसा प्रत्येक बार करना आवश्यक है। वीर्य

विभिन्न पशुओं के मादा का ऋतुकाल, गर्भकाल, वीर्य की मात्रा एवं गर्भित करने का समय सूचक सारणी।

पशु Animal	प्रजनन काल Breeding Period	वर्ष में ऋतुमयी होना	पुनः ऋतुमयी होना		ऋतुकाल की अवधि (Heat Period)	वीर्य डालने का समय (Insimination time	वीर्य की मात्रा (Dose)	गर्भकाल (Gestation period)
			गर्भ न ठहरने पर (Oestrus cycle)	ब्यांत के बाद				
गाय	वर्ष भर तथा गर्मियों में अधिक	कई बार	21 दिन	30-60 दिन में	16-24 घंटे	गर्भ के 20 घंटे बाद तथा गर्मी समाप्त होने के 8 घंटे पहले	1 मि0ली	280 दिन
भैंस	वर्ष भर तथा बरसात में अधिक	वर्ष में कई बार	21	30 - 60 दिन में	8-30 घंटे	गर्मी के 30-32 घंटे बाद	1 मि0ली	310 दिन
घोड़ी	फरवरी से जुलाई	मौसम में कई बार	18-24 औसत 21 दिन	5-11 दिन	4-7 दिन	गर्म होने के तीसरे दिन उसके बाद रोज एक बार जब तक वह गर्म रहे	30-40 मि0ली0	336 दिन
भेड़	अगस्त से जनवरी तक	मौसम में कई कई बार	हर 16-17 दिन बाद	4-6 माह में	24-48 घंटे	गर्म होने के के 27 घंटे बाद	0.1 मिली0	150 दिन
बकरी	सितम्बर से फरवरी	मौसम में कई बार	18-21 दिन बाद	6-8 माह बाद	48-72 घंटे	गर्म होने के 36-54 घंटे के के बाद	01मिली0	145 दिन
सूअर	वर्ष भर परन्तु बसंत में अधिक	कई बार	21 दिन बाद	7-8 माह में	2-3 दिन	गर्म होने के दूसरे दिन	50-100 मि0ली0	114 दिन
कुतिया	बसंत से पतझड़ तक	एक बार कभी-कभी 2 दो बार	180 दिन बाद	8-9 माह	7-13 दिन	गर्म होने के 2-3 दिन या 11 वें व 13 वें दिन	1/2-1.0 मि0ली0	63 दिन

को वीर्य सेचन नलिका से योनि में ग्रीवा के मध्य पहुँचाते हैं। तत्पश्चात् इस यंत्र को धीरे-धीरे बंद करते हुए बाहर खींच लेना चाहिए।

इस विधि में यंत्र को बार-बार साफ करना पड़ता है जिससे एक दिन में कम ही पशु गर्भित हो पाते हैं तथा रोग फैलने का भय रहता है।

(3) रेक्टम योनि विधि (Recto Vaginal Method) :- यह विधि अधिक प्रचलित है एवं सर्वोत्तम मानी जाती है। बायें हाथ को साबुन से चिकना करके मलाशय (Rectum) में डालते हैं और धीरे-धीरे गोबर निकालकर सफाई करते हैं फिर हाथ की अंगुलियों को मिलाकर अंगूठे के साथ ही चिपकाकर हाथ आगे बढ़ाते हैं ताकि नीचे की ओर ग्रीवा को पकड़ लें। तब फिर दायें हाथ की सहायता से वीर्य सेचन नली को योनि के भीतर डालते हैं और बायें हाथ से महसूस करते हैं ताकि यह सेचन नलिका ग्रीवा के मध्य भाग तक पहुँच जायें। तब फिर सीरिंज की सहायता से सेचन नलिका द्वारा वीर्य मादा जनन अंग तक पहुँचा दिया जाता है।

प्रयुक्त होने वाले आवश्यक यंत्र वीर्य सेचन नलिका (Inseminating Tube) :- यह कांच या प्लास्टिक की बनी होती है और लम्बाई 51 से0मी0 होती है। इसमें पतला सुराख होता है जिसके द्वारा वीर्य पहुँचाया जाता है। इसका एक सिरा थोड़ा सा पतला तथा दूसरे सिरे पर रबर की छोटी नली (Adopter) लगी रहती है जिसकी सहायता से इसमें सिरिंज लगाते हैं।

2. **सीरिंज (Syringe) :-** चिकित्सालयों में प्रयुक्त होने वाली सीरिंज की आमतौर पर वीर्य सेचन के लिए इस्तेमाल करते हैं। इस पर 1-5 घन से0मी0 के चिन्ह अंकित होते हैं।

3. **योनि स्पेकुलम (Vagina-speculum) :-**यह स्टेनलैस स्टील का बना होता है जिसको जीवाणु रहित बनाकर चिकना पदार्थ लगाकर योनि में डाला जाता है और गाय के मदकाल की अवस्था का ज्ञान होता है।

4. **अन्य (Others) :-** दस्ताने, एप्रन साबुन आदि।

गर्भाधान के लिए अंग (Place of Insemination) :-वीर्य को मध्य ग्रीवा (Mid Cervix) में छोड़ना गर्भधारण (Rate of conception) की दृष्टि से अच्छा माना जाता है। इसमें न केवल कम वीर्य की आवश्यकता है अपितु गर्भाशय नाल में कोई क्षति होने की संभावना नहीं रहती है।

6.3.7 कृत्रिम गर्भाधान में प्रयुक्त यंत्रों को जीवाणु रहित करना (Sterilization of A.I. Equipments) :-

कृत्रिम गर्भाधान में कांच, रबर तथा लैटेक्स और धातु के अनेक उपकरण प्रयुक्त होते हैं। यदि इनकी साफ-सफाई न की जायें तो अच्छे-भले स्वस्थ पशु भी हमेशा के लिए जननेंद्रिय रोग लगाकर खराब हो सकते हैं। अतः इनकी सफाई तथा जीवाणु रहित करना जरूरी है।

प्रमुख यंत्र (Main Equipments for A.I.) :-

1. रेफ्रिजरेटर (165-200 ली0) या दो थर्मस फ्लास्क
2. हाट एअर ओवेन (Hot air oven)
3. आसवन उपकरण (Distilling Apparatus)
4. स्टोव
5. सूक्ष्मदर्शी
6. कांच के स्लाइड
7. योनि में डालने वाला कैथीटर
8. सीरिंज (Syringes)
9. योनिवीक्षण यंत्र (Vaginal Speculum)
10. परखनली एवं परखनली-रैक (Test tubeand test tube rack)
11. पाईरैक्स हेतु 500 मि0ली0 का फ्लास्क
12. पानी का कांच का 5 ली0 का पात्र
13. द्रव पैराफिन, साबुन, तौलिया, डिटौल, साबुन का घोल
14. सोडाबाई कार्ब, पोटैशियम परमैगनेट
15. स्वच्छ रुई
16. कृत्रिम योनि
17. थर्मामीटर, बीकर, साफ चिमटी, इनेमल तश्तरियाँ, बाल्टियाँ, अड्गड़ा (प्रजनन क्रैट)
18. रबर के दस्ताने, ऐप्रिन कोट, गम बूट जूते, ब्रुश, माचिस, फिल्टर, पेपर, पानी, नाइट्राजीन पेपर, वाच ग्लास, रंगीन पेंसिल।
19. छिड़कने वाला पाउडर, वीर्य तनुकारक, एंटीबायोटिक्स तथा सल्फाड्रग, एल्कोहल, विभिन्न अभिरंजक
20. वीर्य, वीर्यवाहक एवं वीर्य एकत्र करने वाली परखनली, कैशिका नालिकायें, ताजा अण्डा

यंत्रों की सफाई :-

1. योनि में वीर्य डालने के बाद काम में आये हुए प्रत्येक यंत्र को भली प्रकार तुरन्त स्वच्छ ताजे अथवा गुनगुने पानी से खूब धो डालना चाहिए ताकि वीर्य उसमें न जम सकें। तत्पश्चात् इन्हें साबुन के गर्म घोल से धोकर, पानी से साफ करके डिस्टिल्ड वाटर से धो डालना चाहिए।
2. कांच के बने यंत्रों को जीवाणु-रहित करने के लिए उन्हें पानी से साफ करके सुखाकर या तो

140^0F पर हाट एअर ओवेन में आधे घंटे के लिए रखते हैं या 10 मिनट तक पानी में उबाल लेते हैं। बाहर निकालने के पूर्व ओवेन का तापक्रम कम कर देते हैं।

3. रबर एवं लैटेक्स के बने पदार्थों को 3-5 मिनट तक खौलते हुए पानी डुबोकर जीवाणु रहित किया जाता है। लैटेक्स के बने हुए पदार्थों को प्रयोग में लाने से पूर्व 70% ऐल्कोहल में डुबोकर सुखा लेते हैं।

4. वीर्यवाहक नली (Inseminating Pipette) तथा पिचकारी को पहले स्वच्छ ताजे पानी में धोकर तथा ब्रुश करके फिर गर्म पानी में धोते हैं। बाद में डिस्टिल्ड वाटर में धोकर, शुद्ध कपड़े में लपेटकर हाट एअर ओवेन में एक घंटे के लिए 160^0C पर रखकर जीवाणु रहित करते हैं। यदि इससें कभी भी किसी कारण वीर्य जमकर सूख जाये तो उसे 24 या 48 घंटे क्रोमिक अम्ल घोल (6% पौटाशडाइक्रोमेट तथा H_2SO_4) में रखकर साफ किया जाता है।

5. धातु के बने यंत्र आधे से एक घंटे खौलते हुए पानी में डालकर जीवाणुरहित किये जाते हैं।

6.4 सारांश Summary :-

यद्यपि हमारा देश दूध उत्पादन में विश्व में प्रथम स्थान पर है, फिर भी प्रतिपशु उत्पादकता विश्व के अन्य विकसित देशों की तुलना में काफी कम है। देश में पशुओं की संख्या बहुत अधिक 82% गौवंश तथा 50% भैंस देशी, मिश्रित तथा छोटे आकार की है। इनकी उत्पादकता बहुत ही कम होती है। भारत में शुद्ध नस्ल के सांड़ बहुत ही कम संख्यायें है जिससे इन पशुओं की आनुवंशिक क्षमता में सुधार किया जा सके। भारत के इन देशी पशुओं की आनुवंशिकी में सुधार के बिना इनकी उत्पादकता नहीं बढ़ सकती है। ऐसी स्थिति में पशुओं का तेजी से सुधार करने के लिए कृत्रिम गर्भाधान (Artificial Insemination) को अपनाया जा सकता है। प्राकृतिक प्रजनन से एक सांड़ 5 गायों को गर्भित कर सकता है जबकि कृत्रिम गर्भाधान से लगभग 1000 गायों को गर्भित किया जा सकता है। इस प्रकार सांड़ की प्रजनन क्षमता बढ़ जाती है और सिद्ध सांड़ (Proven bull) का उपयोग बढ़ सकता है। इससे काफी संख्या में पशुओं का सुधार तेजी से संभव है। इसके साथ देशी तथा कम उपयोगी नर पशुओं को बधिया करके उनसे अन्य कार्य लिये जा सकते हैं।

कृत्रिम गर्भाधान की सफलता के लिए गाय को सही समय पर गर्भाधान करना चाहिए, कृत्रिम गर्भाधान में प्रयुक्त यंत्रों की साफ-सफाई तथा जीवाणुनाशन ठीक प्रकार से होना चाहिए।

6.5 उपयोगी पुस्तकें-

(1) एनिमल जेनेटिक्स एण्ड ब्रीडिंग प्रैक्टिसेज़ - डा0 जगदीश प्रसाद।

इण्टरनेशनल बुक डिस्ट्रीब्यूटिंग कम्पनी, लखनऊ।

(2) पशुपालन एवं पशु चिकित्सा विज्ञान - डा0 देव नारायण पाण्डेय।

(3) हैण्ड बुक आफ एनिमल हस्बैन्ड्री - आई0 सी0 ए0 आर0 प्रकाशन।

6.6 संबंधित प्रश्न-

1. कृत्रिम गर्भाधान की परिभाषा व इतिहास लिखें।
2. कृत्रिम गर्भाधान के लाभ व हानियों लाभ वर्णन करें।
3. वीर्य एकत्रीकरण की प्रमुख विधि का वर्णन करें।
4. वीर्य तनुकरण पर निबन्ध लिखिए।
5. वीर्य परीक्षण पर टिप्पणी लिखे।
6. वीर्य को सुरक्षित रखने की विधि का वर्णन करें।

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त
विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

CLPS - 03
पशु पालन : प्रबन्धन,
प्रजनन एवं पशु रक्षा

खण्ड

03

पशुओं की देखरेख एवं प्रबन्ध

इकाई-7

पशुओं का रखरखाव

इकाई-8

पशुओं की दिनचर्या

इकाई-9

फार्म पशु प्रबन्धन तथा पशुओं की बुरी आदतों का सुधार

परामर्श-समिति

प्रो0 केदार नाथ सिंह यादव	**कुलपति - अध्यक्ष**
डॉ0 हरीशचन्द्र जायसवाल	**कार्यक्रम संयोजक**
डॉ0 रत्नाकर शुक्ल	**कुलसचिव - सचिव**

परिमापक

प्रो0 जगदीश प्रसाद — संकाय प्रमुख, पशुपालन एवं पशु चिकित्सा संकाय इलाहाबाद एग्रीकल्चर युनिवर्सिटी, इलाहाबाद

सम्पादक

प्रो0 आर0 के0 यादव — अवकाश प्राप्त प्राचार्य एवं विभागाध्यक्ष पशुपालन एवं डेरी विज्ञान विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी

CLPS - 03 पशु पालन : प्रबन्धन, प्रजनन एवं पशु रक्षा

लेखक मंडल

खण्ड : एक	:	डॉ0 राम प्रवेश, तकनीकी सहायक, डॉ0 जयसिंह से संबद्ध पशुपालन एवं डेरी विज्ञान काशी हिन्दू-विश्व विद्यालय, काशी
दो	:	डॉ0 राम प्रवेश, तकनीकी सहायक, डॉ0 जयसिंह से संबद्ध पशुपालन एवं डेरी विज्ञान काशी हिन्दू-विश्व विद्यालय, काशी
तीन	:	डॉ0 शीतला प्रसाद वर्मा, वरिष्ठ प्रवक्ता (पशुपालन एवं दुग्ध विज्ञान) कुलभास्कर आश्रम स्नातकोत्तर महाविद्यालय, इलाहाबाद
चार	:	डॉ0 शीतला प्रसाद वर्मा, वरिष्ठ प्रवक्ता (पशुपालन एवं दुग्ध विज्ञान) कुलभास्कर आश्रम स्नातकोत्तर महाविद्यालय, इलाहाबाद
पाँच	:	डॉ0 शीतला प्रसाद वर्मा, वरिष्ठ प्रवक्ता (पशुपालन एवं दुग्ध विज्ञान) कुलभास्कर आश्रम स्नातकोत्तर महाविद्यालय, इलाहाबाद

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद की ओर से डॉ. रत्नाकर शुक्ल, कुलसचिव द्वारा प्रकाशित, तथा नितिन प्रिन्टर्स, 1, पुराना कटरा, इलाहाबाद द्वारा मुद्रित। 2006 फोन - 2548837

खण्ड तीन का परिचय : पशुओं की देखरेख एवं प्रबन्ध

इसके अन्तर्गत निम्न इकाइयाँ हैं ।

7. पशुओं का रखरखाव
8. पशुओं की दिनचर्या
9. फार्म पशु प्रबन्ध तथा पशुओं की बुरी आदतों का सुधार

किसी भी प्रकार की पशुधन इकाई चाहे वह छोटी हो या बड़ी, कुशल प्रबन्धन व देखरेख से ही उसे लाभप्रद बनाया जा सकता है। इसके अन्तर्गत इकाई सात में मुख्यत: गाभिन पशु की पहचान, देखरेख व प्रबन्धन, दुधारू पशु तथा सांड़ एवं बछड़े-बछियों की देखरेख एवं प्रबन्धन से सम्बन्धित जानकारी सम्मिलित की गयी है। इकाई– आठ पशुओं की दिनचर्या में मुख्यत: डेरी फार्म का दैनिक कार्यक्रम यथा फार्म पशुओ की पहचान, उन्हें नापना व भार निकालना, सींघ रोधन, दोहन, बधिया करना, खुरैरा करना, स्नान कराना, व्यायाम कराना, पशुओं को पकड़ना, खुर बनाना, पानी पिलाना तथा पशुओं को गिराना सम्मिलिति किया गया है। इकाई – नौ फार्म पशु प्रबन्ध अन्तर्गत फार्म प्रबन्ध की संकल्पना, स्वरूप, क्षेत्र, कार्य, पशु प्रबन्धन के सिद्धान्त, पशुधन फार्मों का वर्गीकरण, प्रबन्ध कार्यक्रम लागू करने में कठिनायाँ तथा पशुओं की बुरी आदतों के कारण व निवारण से सम्बन्धित जानकारी सम्मिलित की गयी है।

इकाई 7 : पशुओं का रखरखाव

इकाई की रूपरेखा

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 गाभिन पशु की देखरेख

7.3.1 गाभिन पशु की पहचान

7.3.2 गर्भ धारण का समय

7.3.3 दुधारू पशु को गर्भावस्था के दौरान सुखाना

7.3.4 प्रारम्भिक महीनों में गाभिन पशु की देखभाल

7.3.5 गाभिन पशु का आहार

7.3.6 गाय के ब्याने के पूर्व लक्षण

7.4 ब्याते समय पशु की देखभाल

7.4.1 बच्चा जनन की अवस्थायें

7.4.2 ब्याते समय व ब्याने के बाद पशु की देखभाल के समय मुख्य बातें।

7.4.3 ब्याते समय उत्पन्न होने वाली समस्यायें तथा उनका निराकरण

7.4.4 गर्भाशय का बाहर आना

7.5 दुधारू पशु की देखभाल

7.6 नवजात बछड़े-बछियों की देखभाल

7.7 सांड़ की देखभाल व प्रबन्ध

7.8 सारांश

7.9 उपयोगी पुस्तकें

7.10 संबंधित प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

दुधारू पशु के लिए उसका गाभिन होना और बच्चा देना जरूरी है। यदि दुधारू गॉय दोबारा गाभिन नहीं होगी तो कुछ समय के बाद सूखी (Dry) हो जायेगी अर्थात् वह तब तक सूखी समझी जायेगी जब तक कि वह बच्चा न दे दे।

प्राय: यह देखा जाता है पशुपालक दुधारू पशु पर जितना ध्यान देते हैं उतना गाभिन पशु पर नहीं देते। जबकि गाभिन पशु पर ध्यान देना बहुत जरूरी है क्योंकि अच्छी देखरेख के बाद पशु से मिलने वाले दूध तथा वत्स के स्वास्थ्य पर सीधा प्रभाव पड़ता है। सामान्यत: बछिया को दो वर्ष की औसतन उम्र में गाभिन हो जाना चाहिए। वास्तव में पशु ब्याने के 3 महीने के अन्दर पुन: गाभिन हो जाना चाहिए।

7.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़कर शिक्षार्थी यह गौवंश की वैज्ञानिक दृष्टि से देखभाल व प्रबंधन में दक्षता प्राप्त कर सकते हैं:

(1) गाभिन पशु की देखभाल व प्रबंधन की जानकारी प्राप्त करना।

(2) ब्याने के पश्चात शिशु व मादा पशु की देखभाल करना।

(3) वत्स पालन एवं प्रबंधन का ज्ञान प्राप्त करना।

(4) सांड़ की देखरेख व प्रबन्ध में दक्षता प्राप्त करना।

(5) दुधारू पशु की देखरेख और उनका प्रबंधन करना।

7.3 गाभिन पशु की देखरेख

7.3.1 गाभिन पशु की पहचान

गर्भधारण करने पर गाय व भैंस में निम्नलिखित लक्षण प्रकट होते हैं :–

(1) गाभिन पशु शान्त स्वभाव धारण कर लेती है।

(2) गाभिन पशु अपने पास सांड़ को नहीं आने देती है।

(3) गाय में मदकाल की पुर्नावृति नही होती है।

(4) दुग्ध उत्पादन धीरे-धीरे कम हो जाता है।

(3) गाभिन मादा धीरे-धीरे मोटी होने लगती है और वजन बढ़ने लगता है।

(6) जैसे-जैसे दिन बीतते हैं पशु का पेट बढ़ने लगता है और उसका अयन एवं थन भी विकसित होने लगते है।

(7) यदि 4 महीने के गाभिन पशु को कुछ समय तक भूखा रखा जाय और तत्पश्चात् उसे ठण्डा पानी पीने को दिया जाय, तो पेट में बच्चे का हिलना डुलना स्पष्ट अनुभव किया जा सकता है।

(8) 4-5 महीने के गाभिन पशु में हृदय की धड़कन स्पष्ट सुनी जा सकती है। स्टैथस्कोप यन्त्र की सहायता से धड़कनों ज्यादा स्पष्ट रूप से सुना जा सकता है।

(9) 5-6 महीने गर्भावस्था में पेट में बच्चा हिलता-डुलता है।

(10) सात महीने का गर्भ होने पर पशु का योनिद्वार कुछ फैला हुआ दिखायी पड़ता है।

7.3.2 गर्भधारण का समय

पशु को गाभिन कराने की विधियों के अभिलेख रखना चाहिए। इससे उनके प्रसव काल की सही तिथि का अनुमान लगाया जा सकता है। पशुपालक को पशु चिकित्सक से मिलकर ब्याने की तिथि निर्धारित कर लेनी चाहिए।

गर्भावस्था की अवधि

पशु	गर्भ अवधि दिन
गाय	282-285
भैंस	310-312
बकरी	145-150
भेंड़	148-151
कुतिया	62-63
ऊँटनी	368-370
घोड़ी	338-341
गधी	373-375
हथिनी	725-735

7.3.3 दुधारु पशु को गर्भावस्था के दौरान सुखाना

वैज्ञानिक शोध से ज्ञात हो चुका है कि यदि गाय को ब्याने के दो से तीन माह पूर्व दूध निकालना बन्द कर दिया जाय तो वह अगने ब्यांत में अधिक दूध देगी, क्योंकि ऐसा करने में गाय दुग्ध काल के ब्यय हुई शक्ति को फिर से प्राप्त करके अपने स्वास्थ्य में बढ़ोत्तरी कर लेगी। यह समय (Dry Period) कम से कम 40 दिन का है और यदि दुधारु पशु कमजोर है तो और बढ़ाया जा सकता है।

गाय में विशेषकर कैल्सियम तथा फास्फोरस की मात्रा जो कि उसके शरीर से दुग्ध काल में व्यय हो चुकी है उसे भी पूरा कर लेती है। इसके साथ-साथ विटामिन 'ए' तथा 'डी' की कमी को भी गाय पूरा करती है। यदि गाय को समय पर सुखाया नहीं गया तो उसके बच्चे कमजोर व कद में छोटे होगें, ब्याने के बाद गाय का स्वास्थ्य कमजोर रहेगा तथा वह गाय अगले ब्यांत में दूध भी कम देगी।

हमारे देश में प्राय: पशुपालकों के सामने गाय को सुखाने की कोई समस्या नहीं है, क्योंकि यहां देशी गाय प्राय: ब्याने के 3-4 माह पूर्व स्वयं ही दूध देना बन्द कर देती है लेकिन कुछ संकर गायों या उन्नत किस्म की दुधारु गायों को ब्याने के पूर्व सुखाना आवश्यक है। गाय को सुखाने के लिए तीन विधियाँ अपनायी जाती हैं।

(1) अपूर्ण दोहन (Incomplete milking)

(2) एक समय का दूध निकालकर व दूसरे समय का छोड़कर (Intermittent milking)

(3) दूध दोहन पूर्ण बन्द करके (Complete cessation of milking)

सूखी गायों को व्यायाम की उचित सुविधा देने से उनका स्वास्थ्य ठीक बना रहता है और ब्याने में कोई कष्ट नहीं होता है। गाय पक्के फर्श पर फिसलने न पाये नहीं तो गाय को चोट लग सकती है और गर्भपात भी हो सकता है। गाय के ब्याँत में उसके उत्पादन की मात्रा उसके ब्याते के समय स्वास्थ्य पर निर्भर करती है। अनुभवों से यह सिद्ध हो चुका है कि यदि सूखी अवधि (Dry period) में पशु का खान-पान ठीक नहीं रहा है और ब्याते समय स्वास्थ्य ठीक नहीं है तो ब्याने के बाद उसका कितना ही अच्छा आहार व प्रबन्ध करें, तो भी वह गाय दूध उत्पादन में अच्छी नहीं हो सकती।

7.3.4 प्रारम्भिक महीनों में गाभिन पशु की देखभाल

(1) गाभिन पशु के साथ सरल व्यवहार करना चाहिए।

(2) गाभिन पशु को कभी डराना-धमकाना या दौड़ाना नहीं चाहिए।

(3) गाभिन पशु को ऐसे पशु से दूर रखे जिनको गर्भपात हुआ है या अन्य कोई संक्रामक बीमारी हुई हो।

7.3.5 गाभिन पशु का आहार

(1) गाभिन पशु को 30-40 ग्राम खनिज मिश्रण के साथ लगभग 50 ग्राम नमक प्रतिदिन दें।

(2) गाभिन गाय-भैंस के ब्याने के तीन माह पूर्व से 1.5 किग्रा दाना अवश्य देना चाहिए।

(3) गर्भावस्था में कब्ज वाले एवं सूखे चारे का प्रयोग कम करें और दलहनी हरे चारे का प्रयोग ज्यादा करें।

(4) चारा-दाना बदलना हो तो परिवर्तन बहुत धीरे-धीरे करें।

(5) कैल्सियम, फास्फोरस तथा विटामिन पशु को प्रतिदिन देना चाहिए।

(6) ब्याने के एक सप्ताह पूर्ण गाभिन गाय व भैंस को उच्च कोटि के शीघ्र पाचक चारे जैसे चोकर, अलसी की खली देकर दाने की मात्रा बढ़ायी जानी चाहिए।

(7) स्वच्छ पीने के पानी की व्यवस्था करनी चाहिये।

7.3.6 गाय के ब्याने के पूर्व लक्षण

ब्याने से 15 दिन पूर्व वाली गाय को Down Calvers कहते हैं। गाय को इस समय प्रसूति गृह में रखना चाहिए। प्रसूति गृह इतना बड़ा होना चाहिए कि व्याते समय गाय को काफी स्थान मिल सके, क्योंकि गाय का प्रसव काल आरम्भ होने से पूर्व प्रसव पीड़ा के कारण गाय कभी उठती है कभी बैठती है।

प्रसव पीड़ा प्रारम्भ होने पर गाय निम्नलिखित लक्षण प्रकट करती है।

(1) गाय लात चलाती है, और खाना कम खाती है।

(2) वह बार-बार उठती-बैठती और पूँछ हिलाती है।

(3) वह बार-बार मूत्र त्यागने और गोबर करने का उपक्रम करती है।

(4) उसके थन और अयन फूल जाते हैं और उनमें से स्वयं ही दूध निकलते लगता है।

(5) वह एकान्त में रहना पसन्द करती है।

(6) वह प्राय: चारा-दाना खाना बन्द कर देती है।

(7) उसकी योनि से हल्के पीले रंग का द्रव बहने लगता है।

7.4 ब्याते समय पशु की देखभाल

प्रसव वह क्रिया है जिसमें बच्चा मादा के गर्भाशय से बाहर आ जाता है यह काल मादा के लिए बहुत ही नाजुक होता है। अत: इस समय पशु पालकों को प्रसव के समय निम्न बातों का विशेष

ध्यान रखना चाहिए।

(1) पशुओं के झुण्ड से अलग करना–प्रसव के लक्षण प्रकट होते ही गाय को समूह के अन्य पशुओं से अलग कर देना चाहिए क्योंकि यदि वह अन्य पशुओं के साथ रहेगी तो प्रसव में कठिनाई होगी। अत: गाय को प्रसूति गृह में ले जाना चाहिए। ऐसे समय में गाय एकान्त में रहना ज्यादा पसन्द करती है और अच्छी प्रकार ब्याती है।

(2) प्रसूति गृह की सफाई–प्रसूति गृह में गाय को ले जाने के पूर्व प्रसूति गृह की गन्दगी साफ कर देनी चाहिए। ब्याते समय गाय के शरीर से बहुत सा तरल पदार्थ निकलता है जिस पर मक्खियाँ बहुत अधिक आती है। फर्श की मिट्टी में डी० डी० टी० या बी० एच० सी० मिला लेना चाहिए। अथवा पक्के फर्श को फिनाइल घोल से धो देना चाहिये।

(3) बिछावन का प्रबन्ध करना– कभी-कभी गाय खड़ी अवस्था में ब्याती है, ऐसी दशा में बच्चे को गिरने के कारण चोट लग सकती है। अत: बच्चे को चोट से बचाने के लिए और ब्याते समय गाय को आराम देने के लिए प्रसूति गृह में काफी व अच्छी प्रकार के बिछावन का प्रबन्ध करना चाहिए।

(4) ब्याते समय पास में बैठकर गाय की निगरानी करना–जिन गायों का स्वास्थ्य ठीक रहता है, उन्हें प्रसव के समय किसी प्रकार की सहायता की आवश्यकता नहीं होती। परन्तु कमजोर गाय या ऐसी गाय को जिसके पेट में बच्चे की स्थिति ठीक नही है कभी-कभी सहायता की आवश्यकता पड़ सकती है। ऐसे समय के लिए किसी अनुभवी पशुपालक को गाय के पास बैठकर उसकी देखभाल करनी चाहिए।

7.4.1 बच्चा जनन की अवस्थायें

गाय के बच्चा जनन की चार अवस्थायें होती हैं।

(1) प्रथम अवस्था (Primary Stage)–इस अवस्था में गाय का अयन या थन फूल जाता है और कुछ कड़ा हो जाता है। थनों से एक साफ चिपचिपा पदार्थ बाहर निकलने लगता है। गाय के जनन अंग के बाहरी भाग सूजकर बड़े हो जाते हैं और उनमें से श्लेष्मा बहने लगता है जो कि गाय की पूँछ और पिछले अंगों को गन्दा किये रहता है। वह कभी-कभी रंभाती (bellows) भी है।

(2) द्वितीय अवस्था ग्रिवा का शिथिल होना (Dilation of Cervix stage)–इस अवस्था में गाय की बेचैनी बढ़ जाती है और प्रसव के समय होने वाले दर्द उठते हैं। गाय कभी लेट जाती है कभी उठ जाती है। दर्द तेज होने पर उठने व लेटने में तेजी आ जाती है। गाय की सांस और नाड़ी गति बढ़ जाती है। यह अवस्था आधे घण्टे से लेकर तीन घण्टे तक हो सकती है जिसके बाद गाय की भग पर पानी की थैली दिखायी पड़ती है। जब गाय के दर्द उठते हैं बच्चे के पैर दिखायी पड़ते हैं।

(3) तृतीय अवस्था में बच्चे का बाहर निकलना (Expulsion of the foetus stage)–इस अवस्था में दर्द बहुत बढ़ जाते हैं व जल्दी-जल्दी उठने लगाते हैं। गाय अत्यन्त बेचैन रहती है और बार-बार उठती बैठती है। उसकी पीठ कमानीदार हो जाती है और छाती फूल जाती है। प्रत्येक दर्द के साथ पानी की थैली और बाहर की ओर निकल आती है और अन्त में फूट जाती है। अब बच्चे के आगे के पैर और उसके पीछे बच्चे का थूथन गाय की योनि से बाहर निकलते दिखायी पड़ते हैं और बच्चे के कन्धे और छाती बाहर निकल आती है और तत्काल ही एक और बड़े दर्द के साथ बच्चे का पूरा शरीर बाहर निकल आता है।

यदि गाय का प्रसव सामान्य न हो तो पशु चिकित्सक की मदद लेना चाहिए।

(4) चौथी अवस्था में जेर का निकलना (Expulsion of the placenta) इस अवस्था में गाय जेर डालती है। इस जेर के डालने में 4 से लेकर 6 घण्टे तक का समय लगता है। जेर को डालने बाद उसको पशु के पास हटाकर गड्ढे में दबा दिया जाय ।

7.4.2 ब्याते समय व ब्याने के बाद पशु की देखभाल के सम्बन्ध में मुख्य बातें

बच्चा देते समय गाय की योनि गन्दी हो जाती है। अत: उसे गर्म पानी में भिगोये गये कपड़े से अच्छी तरह साफ कर देना चाहिए और प्रसूति गृह से बाहर ले आना चाहिए।

(1) पीने के लिए हल्का गर्म पानी देना–गाय को बच्चा देते ही प्यास लगती है क्योंकि उसके शरीर से काफी तरल पदार्थ निकल जाता है। अत: गाय को ऐसे समय मे पानी हल्का गर्म पिलाना चाहिए। इसके साथ ही पानी में थोड़ा नमक और अजवायन मिलाकर दिये जाने से पेट की सफाई हो जाती है। ठण्डा पानी पिलाने पर जेर डालने में कठिनाई होती है।

(2) जेर को हटाने का प्रबन्ध (Care of Placenta)–साधारणत: गाय बच्चा देने के 3-4 घंटे बाद जेर डाल देती हैं। लेकिन जो गाय कमजोर होती हैं उनकी जेर सुगमता पूर्वक नहीं आती। ऐसे समय निकटस्थ पशु चिकित्सक की सहायता लेनी चाहिए। जेर को पशुशाला से दूर ले जाकर गढ्ढे में दबा देना चाहिए। ध्यान रखें कि उसे पशु खा न जाय। जो गाय जेर खा जाती है उसकी पाचन क्रिया बिगड़ जाती है क्योंकि जेर रूमेन (Rumen) में सड़ने लगती है और शरीर उससे विषैले पदार्थ शोषित करने लगता है। इससे पशु की भूख कम हो जाती है, दुग्धोत्पादन की शक्ति घट जाती है

अधिक दूध देने वाली गाय का खीस एक ही बार में नहीं निकालना चाहिए अन्यथा उसे दुग्ध ज्वर हो जाने का भय रहता है। बच्चा जन्म लेने के बाद बाहर लटकी झिल्ली को कभी भी खींचकर नहीं निकालना चाहिए अन्यथा अगले ब्यांत में पशु अनुपयोगी हो जाता है।

रूकी हुई जेर में निम्न लक्षण दिखायी देते हैं।

(1) पशु का बेचैन होना

(2) जेर में बदबू आना

(3) खाना, पीना, जुगाली बन्द करना।

(4) जेर का बाहर लटकना

(5) पूँछ पर चिपकना

(6) जेर निकालने हेतु जोर लगाना

रूकी हुई जेर के निवारण हेतु निम्न उपचार करना चाहिए।

(1) हाथ से जेर निकालना।

(2) गर्भाशय में एन्टिबायोटिक बोलस रखना।

(3) जेर निकालने के बाद स्थान की सफाई करना।

(3) चारा व दाना खिलाना (Supply of Fodder & Concentrate)–ब्याने वाली

गाय को शीघ्र पचने वाली मुलायम हरी घास व अन्य हरे चारे देने चाहिए। चारे में रेशे की मात्रा अधिक नहीं होनी चाहिए। दाना शीघ्र पचनीय हो। ब्याने से पूर्व लगभग 300 ग्राम सरसों का तेल पिलाने से पेट साफ हो जाता है। बच्चा देने के बाद पशु को निम्न प्रकार खिलायें–

गुड़ 500 ग्राम, अजवायन 100 ग्राम, सोंठ 50 ग्राम तथा मेथी 100 ग्राम लगभग सवा लीटर पानी में खूब उबालकर प्रात: या सायं को पिलाना चाहिए। इसके अतिरिक्त चोकर 500 ग्राम, गुड़ 500 ग्राम तथा अजवायन 50 ग्राम पानी में पकाकर पिलाना चाहिए। धीरे-धीरे चोकर की मात्रा बढ़ाते हैं और एक सप्ताह बाद चूनी चोकर व खली भी मिला लें। 15-20 दिन के पश्चात् खली व दाना दूध के उत्पादन के अनुसार आरम्भ कर देना चाहिए। ऐसे पशु के पास हर समय स्वच्छ पानी की व्यवस्था होनी चाहिए।

7.4.3 ब्याते समय उत्पन्न होने वाली समस्यायें तथा उनका निवारण

(1) मादा पशु बच्चा देने का बहुत प्रयत्न कर रही है लेकिन पानी की थैली बाहर नहीं निकल रही है।

(2) पानी की थैली फटने के 2 से 3 घंटे पश्चात् यदि बच्चे का कोई भी अंग बाहर नहीं आता है।

(3) बच्चे के दो पैर बाहर आये हैं लेकिन आधा घंटा हो गया है, बच्चा बाहर नहीं आ रहा है।

(4) बच्चे का सिर और एक पैर दिखायी दे रहा है।

(5) सिर और दो पैर बाहर आये हैं लेकिन मादा पशु अपना पूरा जोर लगाकर भी बच्चा नहीं निकाल पा रही है तब हमें पशु की मदद करनी चाहिए। दोनों पैरो को बांधकर अयन की तरफ एक साथ जोर लगाकर खींचना चाहिए। ज्यादा जोर नहीं लगाना चाहिए नहीं तो मादा पशु को हानि पहुँचने की संभावना होती है।

(6) उपरोक्त परिस्थिति में बच्चे के जुड़वा होने अथवा अधिक वजन का होने की संभावना रहती है।

(7) इन सब समस्याओं के निवारण हेतु पशु चिकित्सक का सहयोग लेना आवश्यक है।

7.4.4 गर्भाशय का बाहर आना

पशु के ब्याने के बाद कभी-कभी गर्भाशय बाहर की ओर उलटकर योनि मुख से लटकने लगता है। इसके लक्षण निम्न हैं।

(1) गर्भाशय का भाग योनिमार्ग से बहर लटकना।

(2) खाना पीना कम कर देना।

(3) पशु का जोर लगाना।

उपचार–(1) बाहर निकले हुए गर्भाशय को धोकर, साफकर बँधी हुई मुट्ठियों की सहायता तथा तेल का उपयोग कर अन्दर करना चाहिए और प्रोलेप्स कलेम्प भग पर लगा दे।

(2) पशु को प्रोटीन युक्त हल्का शीघ्र पाचक और पौष्टिक आहार देना चाहिए।

(3) पशु के खडा होने की जगह पर अगले पैरो के पास नीचा कर दें ताकि पशु के शरीर का ढलान आगे की ओर हो जाय।

सावधानी–कोई भी व्यक्ति बिना सोचे-समझे व गन्दे हाथों से गर्भाशय के बाहर निकले हुए भाग को अन्दर डालने की कोशिश न करे अन्यथा बच्चेदानी फट सकती है या उसके अन्दर संक्रमण हो सकता हैं।

7.5 दुधारू पशु की देखभाल

दुधारु गाय की देखभाल और प्रबन्ध के सम्बन्ध में अग्रलिखित बातों पर ध्यान देना आवश्यक है–

1. रहने के लिए पर्याप्त स्वच्छ और वायु संचारित स्थान–गाय को धूप, ठण्ड और वर्षा-जल में भीगने से बचाने के लिए उन्हें गोशालाओं में रखने की आवश्यकता होती है। हमारे देश में पशुओं को को अँधेरी, बन्द और छोटी कोबरियों में बन्द रखने का चलन है जहाँ न तो संवातन का कोई प्रबन्ध होता है और पशुओं द्वारा किये मूत्र को बहा ले जाने के लिए कोई नाली नहीं होती है। फल यह होता है कि पशुओं को भीगे कच्चे फर्श पर बैठना पड़ता है, जिससे उन्हें बड़ा कष्ट होता है और पशु स्वस्थ नहीं रह पाते।

पशुओं के विकास का समुचित प्रबन्ध किया जाये इसके लिए जरूरी है कि ये पशुशालायें आरामदेह साफ भली प्रकार वायु संचार और इतनी खुली हुई हों, जिनमें पर्याप्त प्रकाश और वायु पहुँच सके। वह गाय जो आराम से नहीं रह पाती अपने दुग्ध उत्पादन की अधिकतम क्षमता प्रकट नहीं कर सकती। जहाँ तक सम्भव हो गोशाला का फर्श कन्क्रीट, सीमेंट का बना होना चाहिए जिससे कि उसे साफ रखने में आसानी रहे। इसका धरातल खुरदरा होना चाहिए अन्यथा गायें फिसल कर गिर पड़ेंगी और उनकी पैर टूटने का डर बना रहेगा।

वर्षा ऋतु में खुले आँगन की कीचड़ से पशुओं को बचाने के लिए, आँगन में ईंटें बिछवा देनी चाहिए। पशुओं के बैठने के स्थान पर कीचड़ होने से थनैला व चर्म रोग हो सकते हैं।

2. पर्याप्त पानी का प्रबन्ध

पशुओं के लिए स्वच्छ और दूषणरहित पर्याप्त पानी की आवश्यकता होती है। पानी का महत्व इस बात से और भी स्पष्ट हो जाता है कि पशुओं के शरीर में 57% पानी होता है। गाय के दूध में तो 87% पानी होता है। अत: पशुओं को पीने के लिए उन्हें पर्याप्त शुद्ध जल हर समय उपलब्ध रहना चाहिए।

गोशाला में पर्याप्त पानी का सदैव खुली खोर में प्रबन्ध होना चाहिए। यह पानी पशुओं को पीने के लिए ही नहीं अपितु पशुओं और गोशाला की सफाई के लिए भी आवश्यक होता है।

नहरों अथवा कुओं, नलकूपों इत्यादि का पानी पशुओं को पिलाया जा सकता है। यह पानी शुद्ध, गन्ध रहित, रंग रहित और स्वाद रहित होना चाहिए।

पशुओं को चरागाहों में चरने व तालाबों में नहलाने भेजने से पहले सदैव घर पशुओं को स्वच्छ पानी पिलाकर भेजें ताकि पशु तालाब व नहर आदि का गन्दा पानी न पीने पायें। सर्दियों में तीन बार व गर्मियों में 5-6 बार पानी पशु को पिलाना चाहिए।

3. नियमितता और नम्रता का व्यवहार

गाय अत्यन्त ही नियमित जीवन व्यतीत करना पसन्द करती है। अत: यह आवश्यक है कि उसे समय पर भोजन मिले, समय पर पानी पिलाया जायें और उसके दूध दुहने का भी एक निश्चित समय हो। पानी पीने के समय यदि गाय को पानी न पिलाया जाये तो वह प्रतीक्षा करेगी। इस प्रकार चारा खिलाने अथवा दुग्ध दुहने के समय में तनिक सी भी देरी होने पर वह चंचल हो उठेगी और उसके दुग्ध उत्पादन

पर इस बात का प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। अत: गाय के प्रबन्ध में नियमितता का सदा ध्यान रखना चाहिए। गाय को भगाना अथवा डराना भी नहीं चाहिये।

4. रोगी की परीक्षा

तपेदिक, जोन्स बीमारी अथवा संक्रामक गर्भपात इत्यादि किसी रोग से पशु पीड़ित तो नहीं है, इस बात की परीक्षा भली-भाँति करा लेनी चाहिए और जो पशु इनमें से किसी भी बीमारी से पीड़ित हों उन्हें हटाकर, उनका उपचार कराना चाहिए, अन्यथा किसी एक पशु के भी रोगी होने पर वह बीमारी अन्य पशुओं में फैल सकती है। मई जून में वर्षा ऋतु प्रारम्भ होने से पहले पशुओं को गलाघोंटू, खुरपका आदि के टीके लगवा लें। चर्म रोग, लंगड़ा बुखार वर्षा ऋतु में अधिक फैलते हैं।

5. गोशाला की सफाई

गाय को स्वच्छ रखने तथा शुद्ध दूध के उत्पादन के लिए यह आवश्यक है कि गोशाला की पूर्ण रूप से सफाई की जावे। इसके लिए प्रात: सायं दोनों समय पशुशाला को स्वच्छ पानी से धोकर साफ रखना चाहिये। पशुशाला में प्रतिदिन फिनायल भी डाली जानी चाहिए ताकि फर्श रोगाणु मुक्त हो जाय।

6. खुरैरा करना

गायों के खुरैरा करने पर गाय के शरीर की धूल और उखड़े बाल अलग हो जाते हैं जिससे वे दूध दूहने के समय दूध में नहीं गिरने पाते। इसके अतिरिक्त खुरैरा करने से उनके शरीर में रक्त परिसंचरण की गति में वृद्धि होती है। खूँटे से बाँधकर रक्खा जाता हो। दूध दूहने से पहले पशुओं को नहला लेना चाहिए।

7. व्यायाम

गायों को स्वस्थ रखने के लिए उन्हें थोड़ा बहुत व्यायाम देने की परम आवश्यकता होती है। लेकिन व्यायाम का यह अर्थ नहीं है कि गायों को भगाया जाये। यदि गाय प्रतिदिन चरागाह में चरने के लिये भेजी जाती है तो उसे पर्याप्य व्यायाम मिल जाता है। यदि चरागाह का प्रबन्ध न हो तो गोशाला के निकट ही गायों के घूमने फिरने के लिये पर्याप्त स्थान होना चाहिए।

8. गोदोहन

दूध दुहे जाने के लगभग एक घण्टे पूर्व गाय को दुहने के स्थान पर लाकर भली प्रकार झाड़ना और पोंछना चाहिए। तदुपरान्त उसकी टाँगें अयन और थनों को भली प्रकार पानी से धोकर सुखा लेना चाहिए। इसी समय दूध दुहने वाले ग्वाले को अपने हाथ साबुन से धोकर साफ कपड़े पहन लेने चाहिए। दूध नितान्त शान्त वातावरण में दुहा जाना चाहिए और इस कार्य में कोई बाधा नहीं पड़नी चाहिये। गायों को दिन में दो बार निश्चित समय पर दुहना चाहिये और 10 किग्रा० से अधिक दूध देने वाली गायों को 24 घण्टे में तीन बार दुहना चाहिए। जल्दी से जल्दी कम समय में दूध निकालें। दो बार की जगह तीन बार 24 घण्टे में दूध निकालने से 10% दूध बढ़ जाता है। सूखे हाथ एवं पूर्ण हस्तविधि से दोहन करना चाहिए।

9. गाय के गर्मी में आने के लक्षण

1. वह बेचैन सी प्रतीत होती है, पूँछ इधर-उधर फेंकती है और अपने सिर को बार-बार इधर-उधर मोड़ती है और जोर-जोर से रम्भाती है।

2. वह अपना भोजन कम खाती है और उसकी प्यास बढ़ जाती है।
3. वह थोड़ी-थोड़ी देर बाद मूत्र त्याग करती है।
4. बेचैनी के कारण 2-3 दिन के लिए उसका दूध कम हो जाता है और कोई-कोई गायें तो इन दिनों अपने बछड़े को भी दूध नहीं पिलाती है।
5. गर्मी में आयी हुई गाय को अन्य गायों के साथ चरने के लिए भेजा जाता है तो वह अन्य गायों पर चढ़ने का प्रयत्न करती है।
6. साँड से मिलने पर गाय शान्त हो जाती है।

कुछ गायें शर्मीली होती हैं और बाह्यरूप से गर्मी के लक्षण प्रकट नहीं करतीं। इन गायों के गर्मी में आने की पहचान निम्न लक्षणों द्वारा की जा सकती है।

1. गाय के योनिद्वार में सूजन आ जाती है और वह कुछ फूला सा प्रतीत होता है।
2. योनि से सफेद रंग का लसदार द्रव पदार्थ बहता दिखाई पड़ता है। इस द्रव पदार्थ को श्लेष्मल कहते है।
3. यदि गाय की योनि को यन्त्र के द्वारा खोला जाए तो गर्भाशय का द्वार खुला दिखाई पड़ता है।

10. गाय को गर्भ धारण कराना

गाय के मद काल में आने पर होने पर गाय को 8 से 10 घन्टे बाद साँड़ के समीप ले जाना चाहिए। गाय का गर्मी में रहने का समय 18 से लेकर 36 घण्टे तक है। अत: इस अवधि के भीतर ही गाय को साँड़ से संसर्ग कराना आवश्यक होता है। गाय को साँड़ से ऋतु के अन्तिम समय मिलाना सर्वोत्तम रहता है। इससे अधिक देरी होने पर वह साँड़ से मिलना स्वीकार नहीं करती।

हमारे देश में ओसर गायें लगभग तीन वर्ष की उम्र प्राप्त करने पर प्रथम बार गर्भ धारण करती है। एक अच्छी गाय को 12 से लेकर 15 महीने के अन्तराल पर एक बार बच्चा दे देना चाहिये।

गाय को समय पर गर्भ धारण कराने के उपाय–साधारण गाय को ब्याने के 80 से 90 दिन के अन्दर ही गर्भ धारण कर लेना चाहिए। यदि कोई गाय तीन महीने के बाद भी गर्भवती न हो तो ऐसी गाय को साँड़ के साथ चरने के लिए भेजना चाहिये। यदि चार महीने के उपरान्त भी वह गाय गर्भ धारण न करें तो कुछ समय तक उसका आहार कम करके उसे गर्म चीजें जैसे ग्वार, सनई का बीज इत्यादि उबालकर दाने के रूप में खाने को देना चाहिए। 2 किग्रा० अंकुरित चने और 50 ग्राम मेथी का बीज प्रतिदिन दाने के रूप में लगभग दो सप्ताह तक खिलाया जाना लाभप्रद रहता है।

7.6 नवजात बछड़े बछियों की देखभाल (वत्स पालन)

बछड़ा-बछिया की सही देखरेख उसके जन्म से पूर्व ही आरम्भ हो जाती है। यदि गाभिन पशु तथा गर्भस्त बछड़े को आवश्यकतानुसार सही आहार नहीं मिलता है तो उनके वृद्धि व विकास पर विपरित प्रभाव पड़ता है और प्रौढ़ अवस्था भी देरी से आती है।

बछड़ा-बछिया को दूध पिलाने की विधि

(1) अलग से दूध पिलाना (विनिग)

विनिंग से लाभ :

- जितना दूध चाहिए उतना ही पिला सकते हैं।
- किसी भी पशु का दूध पिला सकते हैं।
- नवजात को अलग रखा जा सकता है।
- बीमारियों से बचाव होता है।

(2) थन से दूध पिलाना

थन से दूध पिलाने से होने वाली हानि :

- पशु की दूध देने की क्षमता समझ में नहीं आती है तथा दूध का माप ठीक प्रकार से नहीं किया जा सकता है।
- बछड़ा-बछिया मर जाए तो मादा दूध देना बन्द कर देती है।
- बछड़ा-बछिया को ज्यादा या कम दूध मिल रहा है इसका पता नहीं चल पाता।
- ज्यादा दूध पीने से दस्त की बीमारी हो सकती है और कम दूध पीने से बछड़े का विकास अच्छा नहीं होता है।
- यदि पशु को कोई बीमारी है तो वह तुरन्त बछड़ा-बछिया को हो जाती है।

जन्म के समय बछड़ा-बछिया की देखभाल–

- जन्म के पश्चात् बछड़े के नथूने तथा मुँह पर लगा हुआ श्लेष्मा अच्छी प्रकार साफ कर देना चाहिए।

(3) खीस पिलाना

पहले चार दिन तक बछड़ा-बछिया को खीस पिलाना आवश्यक है।

कुछ पशुपालक पशु के जेर गिरने तक खीस पिलाने का इन्तजार करते हैं यह तरीका गलत है।

खीस से बछड़ा-बछिया को बीमारियों से लड़ने की शक्ति मिलती है।

रोग प्रतिकारक पदार्थों के अभाव में बछड़ा-बढिया रोगों से मुकाबला नहीं कर सकता है अत: प्रत्येक बछड़े को जन्म के पश्चात् दो घण्टे के भीतर उचित मात्रा में खीस पिलाना चाहिए।

यदि अलग से दूध पिलाना हो तो पहले उसे उबाले फिर ठण्डा होने पर पिलायें।

(4) दूध पिलाना

बछड़ा-बछिया के वजन का 10 प्रतिशत दूध प्रतिदिन पिलाना जरूरी होता है। उसे हरा चारा तथा सूखा चारा और दाना मिश्रण (काफ स्टार्टर) नियमित रूप से दो सप्ताह बाद से देना चाहिए।

(5) दूध छुड़ाना

बछड़ा-बछिया का दूध छुड़ाते समय कोई भी परिवर्तन शीघ्र न करे। धीरे-धीरे दूध कम कर, दाना मिश्रण (काल्फ स्टार्टर) और चारे का प्रयोग करे। निम्नलिखित सारणी अनुसार बछड़ा-बछिया को तीन माह तक ही दूध पिलाकर बाद में दूध बन्द कर देना चाहिए। दूध छुड़ाने के बाद दाना मिश्रण और चारे की मात्रा में बढ़ोत्तरी करनी चाहिए। जन्म के 45 दिन तक बछड़ा-बछिया के वजन के दसवें हिस्से के बराबर दूध पिलाया जाता है। 45 से 60 दिनों तक वजन के 8 प्रतिशत, 60 से 90 दिनों तक वजन के 5 प्रतिशत,

मात्र 3 महीनों तक ही दूध पिलाना चाहिए।

सारणी

(बछड़े तथा बछिया के आहार सम्बन्धी सारणी)

उम्र	खीस (किग्रा०)	दूध (किग्रा०)	बछड़े का दाना मिश्रण (ग्राम)	हरा चारा
1-4 दिन	2-2.5	–	–	जितना खास के
4-30 दिन	–	2.5-3.0	–	जितना खास के
1-1 1/2 महीने	–	3.5	250	जितना खास के
1 1/2-2 महीने	–	2.5	350	जितना खास के
2-3 महीने	–	2.0-0.5	500	जितना खास के
3-4 महीने	–	–	700	जितना खास के
4-6 महीने	–	–	1000	जितना खास के

(नोट : ऊपर दी गयी सारणी 25 किलो वजन तक के बछड़े के लिये है)

(6) बछड़ा-बछिया का आहार

बछड़े-बछिया को उसके वजन का 10 प्रतिशत दूध पिलाना चाहिए।

दूध दिन में 2-3 बार देना चाहिए।

दिन तक पशु का पहला दूध (खीस) बछड़ा बछिया को अवश्य पिलाना चाहिए।

बछड़ा-बछिया का पूरक आहार (काफ स्टार्टर) के घटक

- मक्का–50 प्रतिशत
- मूँगफली की खली–20 प्रतिशत
- गेहूँ का चोकर–16 प्रतिशत
- फिश मील तथा सपरेटा दूध–7 प्रतिशत

  (यदि फिश मील उपलब्ध न हो तो मूँगफली की खली की मात्रा बढ़ा दे।)
- शीरा/गुड़–5 प्रतिशत
- खनिज मिश्रण–3 प्रतिशत (1 प्रतिशत अस्थिचूर्ण एवं 1% नमक)

(7) नवजात बछड़ा-बछिया का आहार व्यवस्थापन

बछड़ा-बछिया 15 दिन का होते ही उसके सामने पानी और उनके लिए बनाया गया पशु आहार रखना शुरू कर देना चाहिए। यह आहार वह जितनी जल्दी खाने लगे उतना ही उनका वजन बढ़ेगा और इससे सुषुप्तावस्था में रहने वाले पेट (रियूमन) का विकास होगा और सक्रियता पूर्वक कार्य करने लगेगा। दाने की मात्रा एक मुट्ठी से प्रारम्भ करके धीरे-धीरे इतनी बढ़ानी चाहिए कि 6 माह में वह 1 किलोग्राम पर पहुँच जाए। इसी प्रकार हरा और थोड़ा सा सूखा चारा/घास मिलाकर बछड़े को 15 दिन की आयु से

ही खिलाना आरम्भ करना चाहिए ताकि घास को मुँह में लेकर चबाना शुरू कर दें जिससे उसके पेट का विकास हो सके। विटामिन ए और विटामिन डी की आहार में उपलब्धता बहुत ही आवश्यक होती है। विटामिन ए बछड़ों को खीस से उपलब्ध होता है इसलिए नवजात बछड़ा-बछिया के खीस पिलाना अत्यन्त आवश्यक है। दूध व आहार के साथ बछड़ा-बछिया को थोड़ी मात्रा में खनिज मिश्रण खिलाना चाहिये इससे शरीर में बीमारियों के प्रति सहन शक्ति उत्पन्न होती है और वृद्धि एवं विकास अच्छा होता है।

(8) आवास व्यवस्था एवं देखभाल

आवास व्यवस्था साफ सुथरी हवादार तथा मौसम के अनुरूप होनी चाहिए।

यदि पशुपालक के पास अधिक पशु हो तो पहचान के लिए उनके कान में नंबर डालना जरूरी होता है। यह कार्य जन्म के पहले सप्ताह में करना चाहिए। कान में नंबर होने पर उस बछड़ा-बछिया का सही लेखा-जोखा रखा जा सकता है। हर सप्ताह में वजन लेकर उसके अनुसार उन्हें दूध पिलाना जरूरी होता है। जन्म के समय वजन लेकर तीन महीने तक हर सप्ताह का अभिलेख रखना जरूरी है, उसके बाद एक महीने के अंतराल में वजन लेना चाहिए। बछड़ा-बछिया के वजन में 400 से 500 ग्राम प्रतिदिन वृद्धि होनी चाहिए।

7.7 साँड़ की देखभाल एवं प्रबन्ध

भारत में वृषभ के पालन पोषण एवं खान-पान पर अभी कुछ समय पहले तक कोई विशेष ध्यान नहीं दिया जाता था, पशुपालकों ने न अधिक महत्व दूध देने वाली गायों, बछड़े एवं बछियाओं पर ही दिया है। इसलिए साँड़ के खान-पान के विषय में अधिक कार्य नहीं हुआ है। परन्तु हाल ही में साँड़ के खान-पान और प्रबंध का उसकी वृद्धि, विकास, प्रौढ़ता एवं प्रजनन शक्ति पर पर प्रभाव भी देखा गया है। साँड़ का खान-पान, रहन-सहन व प्रबन्ध निम्न प्रकार होना चाहिए।

(1) बृद्धि काल में भोजन-व्यवस्था–एक (बछड़ा) जिसको कि प्रजनन हेतु पालना है उसका खान-पान व बढ़ोत्तरी के समय उपयुक्त होना चाहिए जिससे कि वह अपनी पैतृकता के अनुसार अपनी बढ़ोत्तरी को पूरा कर सके।

साधारणत: बछड़ों को 4-5 माह तक बछियों के साथ रखकर पाला जाता है। इस अवस्था में दूध या सप्रेटा दोनों ही उपयुक्त हो सकते हैं। 6 माह के बाद बछड़े को बछियों से अलग कर देना चाहिए तथा बाद दूध पिलाना बन्द किया जा सकता है। इस समय इसे 12-15% प्रोटीन युक्त दाने का मिश्रण देना चाहिए और बछड़े की इच्छानुसार उसको दो दलीय चारा देना चाहिए। यदि दाल वाली फसलों के चारे उपलब्ध न हों तो उसके चारे में प्रोटीन वाले चारे व दाने बढ़ा देने चाहिए जैसा कि नीचे की सारणी में दिखाया गया है।

साँड़ के आहार में दाने का मिश्रण देते हैं–

दाना मिश्रण नं० 1	**दाना मिश्रण नं० 2**
4 भाग गेहूँ का चोकर	2 भाग मक्का या जौ
2 भाग पिसी हुई जई	3 भाग पिसी हुई जई
2 भाग अलसी की खली	2 भाग अलसी की खली।

2 भाग नमक व खनीज

2 नमक व खनिज मिश्रण

एक युवा साँड़ को प्रतिदिन 1.5 से 2.0 किलोग्राम दाना प्रतिदिन देना चाहिए।

(2) प्रजनन करने वाले साँड़ की भोजन व्यवस्था–साँड़ प्रजनन की दशा में मोटा नहीं होना चाहिए और उसको केवल इस प्रकार का आहार देना चाहिए जिससे वह अपनी प्रजनन शक्ति को स्थिर रख सके। कुछ वैज्ञानिकों का ऐसा मत है कि साँड़ के मोटा होने से उसकी प्रजनन शक्ति कम हो जाती हैं। परन्तु इसके साथ ही इन बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि साँड़ का आहार ऐसा न हो जिससे वह दुबला हो जाये। यदि साँड़ का आहार ऐसा हो कि वह अपने शरीर भार को स्थिर रख सके।

साँड़ के आहार में प्रोटीन की मात्रा (10 से 12 प्रतिशत) अधिक होनी चाहिए जिसके लिए निम्न दाने का मिश्रण उपयुक्त है–

3 भाग मक्का (पिसी हुई)

2 भाग जई (पिसी हुई)

2 भाग गेहूँ का चोकर

2 भाग अलसी की खली

2 भाग नमक व खनिज

उपरोक्त मिश्रण में से साँड़ की Service के अनुसार उसे प्रतिदिन 2 से 2.5 किग्रा० दाना देना चाहिए। साँड़ के चारे भी उसकी इच्छानुसार होने चाहिए क्योंकि इनमें प्रोटीन, खनिज व विटामिन की काफी मात्रा पाई जाती है। साँड़ को एक किलोग्राम दाना प्रतिदिन निर्वाह आहार के रूप में देना चाहिए तथा प्रजनन हेतु वर्धन दाना लगभग 3किलोग्राम प्रतिदिन दें।

(3) सर्विस के लिये उचित आयु–हमारे देश में साँड 2 से $2\frac{1}{2}$ वर्ष की आयु में वयस्क हो जाता है। 2 वर्ष से पहले साँड़ से प्रजनन कार्य नहीं कराना चाहिए। एक वयस्क साँड़ से प्रजनन के प्रथम वर्ष में 20-30 गाय तथा बाद में 50 से 60 गायें प्रतिवर्ष गर्भित करानी चाहिए। कृत्रिम गर्भाधान विधि में एक सांड ही 1000 गायों के लिये प्रयाप्त होता है।

(4) साँड़ में सींग निरोधन करना–साँड़ की Dehorning के बारे में पशुपालकों के भिन्न-भिन्न मत है, कुछ का कहना है कि सींग निरोधन से उसकी वंशोत्पत्ति कम हो जाती है। परन्तु इस बारे में कोई प्रमाणिक तथ्य नहीं है परन्तु यह सत्य है कि Dehorning से साँड़ की सुन्दरता कम हो जाती है। इसके विपरीत साँड़ तरूण अवस्था में ही खतरनाक हो जाता है। साँड़ सींग रहित रखने के लिए बचपन में नर बच्चा जब 3 सप्ताह का हो जाय तो कास्टिक पोटश विधि से सींग रोधन किया जा सकता है।

(5) साँड़ को व्यायाम कराना–साधारणत: सभी बड़े-बड़े डेरी फार्मों पर साँड़ Herd से अलग रखे जाते हैं जहाँ उनको व्यायाम की उचित सुविधा नहीं मिल पाती। साँड़ को प्रतिदिन व्यायाम देने से वह स्वस्थ रहता है, और अच्छी गुणवत्ता का वीर्य उत्पन्न कर सकता है।

(6) साँड़ का आवास–साँड़ को स्वच्छ, रोशनी युक्त तथा हवादार आवास में रखना आवश्यक है। साँड़ का आवास 3 मी० चौड़ा 4 मीटर लम्बा तथा 3 मीटर ऊँचा हो। फर्श पक्का होना चाहिये तथा इसमें चारे-दाने व पानी की नांद अलग-अलग हो। साँड़गृह में उचित आकार का एक किवाड़ रहित दरवाजा भी होना चाहिए। सांड़गृह से मिला हुआ खुला बाड़ा भी अवश्य बनाया जाना चाहिए।

उपलब्ध स्थान के अनुसार ही इसकी लम्बाई व चौड़ाई रखनी चाहिए। 12 मी० × 15 मी० लम्बा बाड़ा होना अच्छा है। बाड़े के चारों ओर मजबूत एवं 1.5 मी० ऊँची पक्की दीवार होनी चाहिए।

(7) साँड़ के शरीर की नियमित सफाई–साँड़ के शरीर की नित्य की सफाई करते रहने से उसका रोगों से बचाव रहता है। खुरैरा करने से उसके शरीर की गन्दगी एवं बाह्य परजीवियों से छुटकारा मिल जाता है। साथ ही शरीर में रक्त संचार भी ठीक से होने लगता है। साँड़ को मौसम के अनुसार भी चाहिए।

(8) रोगी साँड़ का उपचार–यदि साँड़ बीमार हो जाये तो उसकी तुरन्त पशु चिकित्सक से चिकित्सा करानी चाहिए। फर्श पर पुआल या भूसे का गद्देदार बिछावन बिछाना चाहिए, पीने के लिए ताजा पानी व खाने को ताजा मुलायम व हरा चारा, चावल का मांड़ देना चाहिए। साँड़ को शीघ्र ही रोग मुक्त करने का भरसक प्रयास करना चाहिए।

(9) साँड़ को झुण्ड के साथ रखना–साधारणत: पशुपालक वृषभ को झुण्ड के साथ ही रखते हैं। ऐसा करने से उन्हें साँड़ के पालन पोषण में कम खर्च पड़ता है। परन्तु साँड़ को कभी भी झुण्ड में स्वतन्त्र रूप से झुण्ड में नहीं छोड़ना चाहिए क्योंकि गायों के साथ साँड़ को रखने से कई हानियाँ हैं–

(1) साधारणत: साँड़ और विशेषकर भैंसे पशु पालकों को मारने लगते हैं।

(2) गायों की गर्भित होने की तिथि का पता नहीं चलता।

(3) कभी-कभी गाय ब्याने के बाद जल्दी ही फिर से ग्याभिन हो जाती है। दूसरे कुछ बछिया भी, छोटी अवस्था में ही गाभिन हो जाती हैं और इन सबको डेरीमैन (पशु पालक) पसन्द नहीं करते।

(4) मनमानी और अधिक Service करने से वृषभ का स्वास्थ्य बिगड़ जाता है।

(5) इससे वृषभ शीघ्र ही अनिश्चित प्रजनक और नपुंसक हो जाता है।

7.8 सारांश

किसी विशेषज्ञ या पशु चिकित्सक से पशु को गर्भधारण की जाँच करानी चाहिए। पशु का प्रसव काल के अनुसार ब्यान की तिथि निर्धारित की जा सकती है गाभिन पशु को गर्भस्थ बच्चे की उचित वृद्धि हेतु अन्तिम महीनों में अतिरिक्त आहार देना जरूरी है। ब्याते समय बच्चा सामान्य अवस्था में होने पर उससे किसी तरह छेड़छाड़ नहीं करना चाहिए। बच्चा निकलने में कठिनाई होने पर पशु चिकित्सक की सलाह लें। पशु के ब्याने के बाद धीरे-धीरे आहार में बढ़ोत्तरी करना आवश्यक है। नवजात बछड़ा-बछिया को अलग से दूध पिलाकर पाला जा सकता है। बछड़े के वजन के 10% दूध उसे विभाजित करके दिन में 3 बार पिलाया जाना चाहिए। दुधारु गाय की ठीक ढंग से देखभाल करने पर ही उसकी क्षमतानुरूप दुग्ध उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। सांड़ों को अतिरिक्त देखभाल की जरूरत पड़ती है।

7.9 उपयोगी पुस्तकें

(1) पशुधन प्रबन्ध, डा० राम जीत शर्मा, प्रकाशन निदेशालय
गोविन्द बल्लभ पन्त कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय पन्त नगर

(2) पशुपालन, चिकित्सा एवं मुर्गीपालन, डॉ० जगदीश प्रसाद, कल्याणी पब्लिशर्स, लुधियाना

(3) हैन्ड बुक ऑफ एनिमल हस्बैन्ड्री, आई० सी० ए० आर० (नई दिल्ली)

7.10 सम्बन्धित प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

(1) गाभिन पशु की पहचान कैसे करेगें? गाभिन पशु की देखभाल का वर्णन करें।

(2) दुधारू पशु को गर्भावस्था के दौरान दूध सुखाने का वर्णन करें।

(3) ब्याते समय पशु भी देखभाल तथा उस समय होने वाली समस्याओं का उनके निराकरण के साथ वर्णन करें।

(4) नवजात बछड़े बछियों की देखभाल कर वर्णन करें।

(5) सांड़ की देखभाल व प्रबन्ध वर्णन करें।

लघु उत्तरीय प्रश्न

(1) गाभिन पशु की पहचान बतायें।

(2) पशुओं में गर्भकाल का समय कितना होता है?

(3) गाय के ब्याने के पूर्व लक्षण क्या है?

(4) गर्भाशय के बाहर आने की समस्या का निराकरण कैसे करेंगे?

(5) ब्याते समय पशु में कौन-कौन सी समस्यायें उत्पन्न हो सकती है।

इकाई 8 : पशुओं की दिनचर्या

इकाई की रूपरेखा

8.1 प्रस्तावना

8.2 उद्देश्य

8.3 डेरी फार्म का दैनिक कार्यक्रम

8.4 फार्म पशुओं की पहचान

8.5 पशुओं को नापना

8.6 पशुओं का भार निकालना

8.7 सींग रोधन

8.8 पशुओं को बधिया करना

8.9 दुग्ध दोहन

8.10 पशु बिछावन तैयार करना

8.11 व्यायाम कराना

8.12 खुरैरा करना

8.13 पशुओं को स्नान कराना

8.14 खुर बनाना

8.15 पानी पिलाना

8.16 पशुओं को पकड़ना

8.17 जमीन पर पड़े, बीमार तथा गढ्ढे में गिरे पशु को उठाना

8.18 पशु के पैर की परीक्षा करना

8.19 पैर चलाने वाली गाय को वश में करना

8.20 पशुओं को गिराना

8.21 पशु नियन्त्रण के यन्त्र व उपकरण

8.22 सारांश

8.23 उपयोगी पुस्तकें

8.24 संबंधित प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

विभिन्न प्रकार के पशुधन फार्मों पर अलग प्रकार के दैनिक कार्यों की आवश्यकता होती है। डेरी फार्म तथा बकरी फार्म के दैनिक कार्यों में समानता नहीं होती है। पशुओं को स्वस्थ रखने एवं श्रमिकों

के दक्ष उपयोग के लिए प्रबन्धक को पशुधन सम्बन्धी सभी दैनिक कार्यक्रमों से अवगत होना आवश्यक है। कार्यक्रमों को इस प्रकार क्रमबद्ध किया जाय कि वे बिना समय नष्ट किये एक निश्चित समय से श्रमिकों द्वारा किये जाते रहें। इनको क्रमबद्ध करते समय दो बातों का विशेष ध्यान रखना चाहिए–

(1) सभी कार्यक्रम क्रमबद्ध रूप में एक निश्चित समय पर पूरे होते रहें।

उक्त बातों को ध्यान में रखते हुए पशुधन फार्मों के क्रिया कलापों को सूचीबद्ध करना चाहिए।

(2) सभी श्रमिकों को बराबर कार्य मिले तथा समय समय पर उनको विश्राम, जलपान एवं खाने-पीने का समय मिलता रहे।

8.2 उद्देश्य

(1) डेयरी फार्मों पर विभिन्न कार्यों की वैज्ञानिक प्रबंध।

(2) फार्म क्रियाओं को क्रमबद्ध रूप में समयवत करना।

(3) श्रमिकों का कार्यों के सम्पादन में समुचित उपयोग करना।

8.3 डेरीफार्म का दैनिक कार्यक्रम

इसके अन्तर्गत निम्न कार्य सम्मिलित किये जाते हैं।

(1) दुधारु पशुओं की सफाई

(2) दुधारु पशुओं को दाना खिलाना

(3) दुग्ध दोहन व अभिलेखन

(4) दुग्ध बिक्री

(5) दुग्धशाला की सफाई

(6) दुग्ध आवास की सफाई

(7) दुधारु पशु को सूखा तथा हरा चारा खिलाना

(8) पूरे डेरी फार्म की सफाई

(9) बीमार पशु छांटना तथा अलग करना

(10) मदकाल में आयी गायों को अलग करना

(11) मदकाल में आयी गाय का गर्भाधान कराना

(12) गाभिन गाय, बछड़े तथा सांड़ो को दाने की आधी खुराक खिलाना

(13) सांड़ों को व्यायाम कराना तथा खुरैरा करना

(14) बीमार पशु का उपचार करना

(15) हरे चारे को खेत से लाना

(16) मशीन द्वारा चारा काटना

(17) सुबह शाम चारागाह भेजना

(18) नवजात वत्सों पर नम्बर डालना

(19) बीमारियों के टीके लगवाना

(20) टूटे-फूटे स्थान की मरम्मत, रस्सी, हाल्टर आदि ठीक करना।

(21) अगले दिन के लिए दाने का मिश्रण तैयार करना।

(22) गोशाला के प्रवेश द्वार पर चूना डालना, सफेदी करना व परजीवी दवाओं का छिड़काव करना।

(23) पशुओं को पेट के कीड़े की दवा पिलाना।

(24) गायों की सींग काटना/नवजात वत्सों का सींगरोधन

(25) खुर बनाना,

(26) पशुओं को खुरैरा करना

(27) पशुओं को बेचने व मेले तथा प्रदर्शनी के लिए तैयार करना।

(28) अभिलेख पूर्ण करना

(29) दुग्ध उपकरणों की सफाई करना

(30) आधे बचे दाने के मिश्रण को दुग्ध दोहन के पहले खिलाना

(31) दोहन करना

(32) बछड़ों, साड़ों तथा अन्य पशुओं के घरों की सफाई एवं दाना निकालना

(33) भैंसों को सुबह-शाम तालाब में तैराना।

8.4 फार्म पशुओं की पहचान

पशुओं की पहचान के लिए उनके शरीर पर उपस्थित प्राकृतिक निशान, रंग, आकार के अतिरिक्त उनके शरीर पर नंबर डालकर की जाती है। नम्बर डालने के लिए निम्नलिखित विधियां अपनायी जाती हैं।

(1) दागना (Branding)

(2) गोदना (tattooing)

(3) टैग लागना (Tagging)

(4) कर्ण काटना (Ear Notching)

8.4.1 दागना

पशुओं पर स्थायी नम्बर डालने के लिए उनकी त्वचा को जलाकर नम्बर डाले जाते हैं। ये नम्बर पूर्ण रूप से साफ होते हैं तथा इनको मिटाना या बदलना कठिन होता है। इसे काफी दूर से पढ़ा जा सकता है। दागने के लिए जंघा, पुट्ठा, गर्दन का कूबड़ का स्थान अधिक उपयुक्त होता है।

दागने की मुख्यत: तीन विधियां है।

(क) गर्म लोहे से दागना

(ख) ठण्डे लोहे से दागना

(ग) रासायनिक पदार्थों से दागना

दागने की विधि :

(1) सबसे पहले पशु को पूर्ण नियन्त्रण में कर लें।

(2) दागने वाले स्थान के सभी बाल काटकर साफ कर लें।

(3) लोहे को 2-3 सेकेण्ड तक दागने वाले स्थान पर लगाये।

(4) नम्बरों के बीच-बीच से 2-5 सेमी० की दूरी रखें।

(5) दागने के बाद जिंक आक्साइड तथा अरण्डी के तेल का लेप करें और खूंटे से 30 घण्टे तक बांधे ताकि वह दागने वाली जगह को न चाटने पायें।

(6) पशु को मक्खी-मच्छरों से बचायें।

8.4.2 गोदना

इसमें धातु के नुकाले सिरों वाले अक्षरों और संख्याओं को कान के अन्दर वाली साफ त्वचा पर दबाकर निशान बनाया जाता है। इन निशानों के ऊपर विशेष प्रकार की गोदने की स्याही रगड़ दी जाती है। लोहे के नुकीले कांटो से अक्षर एवं संख्या बनती है। इनके द्वारा बने सुराखों में काली स्याही भर दी जाती है। यह स्याही अक्रियात्मक होती है और त्वचा के नीचे बनी रहती है। गोदे गये निशानों को सावधानी के साथ समीप से देखने से ही पढ़ा जा सकता है। काली त्वचा वाले कान पर संख्या पढ़ना कठिन होता है।

कान गोदने के सेट में गोदने की चिमटी, पर वांछित नम्बर या अक्षर लगाकर सही नम्बर का पेपर पर लगाकर जांच कर ले (1 से 9 तथा 0 अंक एवं A से Z तक अक्षर) गोदने वाले स्थान को स्प्रिट से साफ करके उसे अच्छी तरह सुखा लेना चाहिए। उस स्थान चिमटी को अच्छी तरह दबा दिया जाय। दबाने के पश्चात् चिमटी हटाकर और स्याही लगाकर अंगूठे से रगड़ देना चाहिए।

8.4.3 टैग लगाना

अंक डालने के टैग हल्की धातु (ऐलुमिनियम) अथवा प्लास्टिक के बने होते हैं। इन पर अक्षर या अंक खुदे होते हैं। इनको एक विशेष प्रकार की चिमटी के द्वारा कान में डाल दिया जाता है। कभी-कभी ये टैग गर्दन में बंधी चैन और चमड़े की पट्टियों में लगा दिये जाते हैं। टैग दो प्रकार के होते हैं।

(1) स्वयं छेदने वाले

(2) स्वयं न छेदने वाले।

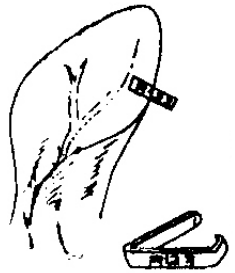

कान में टैग लगाकर पहचान

टैग लगाने की विधि का उपयोग भेड़, बकरी, गाय/भैंस के छोटे बच्चों के लिए किया जाता है।

8.4.4 कर्णकाट–यह विधि आमतौर पर सूअर में अपनायी जाती है। परन्तु भेड़, बकरी तथा अन्य पशुओं में इसका उपयोग किया जा सकता है। इस विधि में कान के किनारों को कैंची द्वारा `V' के आकार में काट दिया जाता है। कान के विभिन्न स्थानों पर इसका नम्बर सुनिश्चित होता है।

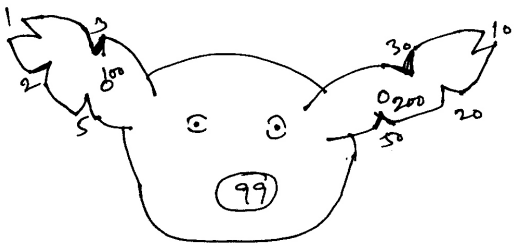

पहचान के अन्य उपाय :

(1) कबूतर तथा मुर्गियों के पंखों तथा पैरों में रिंग/छल्ले पहनाकर

(2) फोटो ग्राफी

8.5 पशुओं को नापना

पशुओं को नापने का अभिप्राय उनकी ऊँचाई, लम्बाई तथा छाती का घेरा नापना है। इनका प्रयोग पशुओं की वृद्धि पर देखने तथा शरीर का भार निकालने के लिए किया जाता है।

ऊँचाई–पशु की ऊँचाई का मतलब भूमि से स्कंध-प्रदेश (Withers) के उच्चतम भाग की नाप है। ऊंचाई नापने के लिए लकड़ी का एक विशेष प्रकार का पैमाना प्रयोग किया जाता है जिसे स्लाइडिंग स्केल कहते हैं। इस पर 90º का कोण बनाती हुई एक छड़ इस प्रकार लगी होती है कि वह ऊपर-नीचे आसानी से की जा सकती है। ऊंचाई नापते समय पशु को समतल जगह पर खड़ा करके अगले पैर से स्कंध प्रदेश के उच्चतम भाग तक तथा कूबड़युक्त पशुओं में कूबड़ के ठीक बाद वाले स्थान तक नापा जा सकता है।

लम्बाई–पशुओं की लम्बाई फीते द्वारा इन्च या सेमी० में नापी जाती है। गाय/भैंस में स्कन्ध से जघनास्थि अग्र (Pin bone) तक नापी जाती है। फीता उपलब्ध न होने पर किसी पतली रस्सी द्वारा लम्बाई नापी जा सकती है।

छाती का घेरा :

पशु की छाती का घेरा स्कन्ध प्रदेश के ऊपर से तथा कूबड़युक्त पशुओं में कूबड़ के ठीक पीछे से कोहनी के जोड़ के पीछे से नापा जाता है। नापने के फीते को अत्यधिक कड़ा या ढीला नहीं रखा जाता। छाती का घेरा इन्चों या सेमी० में नापा जाता है।

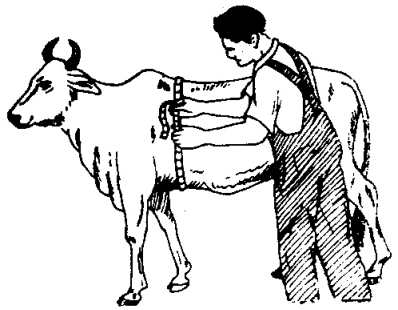

पशु की छाती का घेरा नापना

8.6 पशुओं का भार निकालना

पशु भार निम्न उद्देश्य से निकाला जाता है।

(1) मांसार्थ पशु में मांस की मात्रा का अनुमान करने के लिए।

(2) चारे की मात्रा का पता लगाने के लिए

(3) पशुओं की वृद्धि ज्ञात करने के लिए

(4) पशुओं के लिए दवा की मात्रा निर्धारित करने के लिए

(5) स्वास्थ्य के विषय में जानकारी प्राप्त करने के लिए।

भार निकालने की विधि

(1) मशीन से तौलकर

(2) भार निकालने के सूत्र द्वारा

भार निकालने के विभिन्न सूत्र

(1) शेफर का सूत्र

पशु भार (पौण्ड) = $\frac{\text{ल} \times \text{घ}^2}{300}$ जहां ल = लम्बाई (इंच में) घ = छाती का घेरा (इंच में)

(2) अग्रवाल का सूत्र

पशु का भार (सेर में) = ल x घ / अ

ल = लम्बाई इन्च में

घ = घेरा इन्च में

अ = 9 (जब घेरा 65 इन्च से कम हो)

= 8.5 (जब घेरा 65 से 80 इन्च के बीच हो)

= 8.0 (जब घेरा 80 इन्च से अधिक हो)

हरियाणा नस्ल हेतु–

(3) पशु का भार (किग्रा०) = (3.3 x घ) + उ + 0.7 ल–490

जहां घ = घेरा (सेमी०) में

उ = उदर का घेरा (सेमी०) में

ल = लम्बाई (सेमी०) में

(4) संकर बछिया हेतु पंतनगर द्वारा सूत्र

भार (किग्रा०) = $\frac{H^2 \times L}{11,200}$

H = छाती की गोलाई (सेमी०)

L = लम्बाई सेमी० में

8.7 सींग रोधन

पशुओं के सींग काटना सींगरोधन कहलाता हैं। बचपन में ही सींग की वृद्धि को सदैव के लिए रोकने को श्रृंगकलिका को निकालना (disbudding) कहते हैं। 15 दिन की उम्र तक सींग बटन के आकार की कोमल कलियाँ होती हैं। ये उम्र की बढ़ोत्तरी के साथ बढ़ती हैं तथा सींग बनाती हैं। इन्हें नष्ट करके सींग का बढ़ना बन्द हो जाता हैं। डेरी पशुओं में सींगरोधन के निम्न लाभ हैं :

1. पशु को सींगों से एक दूसरे को हानि पहुँचाते हैं जो सींगरोधन से रोका जा सकता है।
2. सींगरहित पशुओं के लिए कम जगह की आवश्यकता पड़ती है।
3. सींगहीन पशु एक जैसे तथा सुन्दर प्रतीत होते हैं।
4. सींगहीन पशु आपरेटरों को कम-से-कम हानि पहुँचाता है।
5. सींग कैंसर जैसे घातक रोग से बचाव होता है।

बछड़ों की श्रृंगकलिका को निकालने के कार्य को 14 से 21 दिन में करना अच्छा रहता है। कम उम्र में करने से पशु को कम तकलीफ होती है। अधिक उम्र होने के साथ-साथ श्रृंगकलिका कड़ी हो जाती है और रक्त संचार शुरु हो जाता है। तथा पशुओं में सींग रोधन करने से रक्त बहने से प्रक्रिया पूरी नही होती हैं। प्रौढ़ पशुओं के सींग कड़े जाते हैं जिन्हें काटने में काफी परेशानी तथा पशु को तकलीफ होती है।

सींगरोधन की विधियाँ–सींग काटने या रोधन की विधियाँ निम्नलिखित हैं :

1. रासायनिक विधि
2. गर्म लोहे द्वारा
3. आरी या तार द्वारा
4. इलैस्ट्रेटर द्वारा

1. रासायनिक विधि–इस विधि में कास्टिक सोडा या कास्टिक पोटाश का प्रयोग किया जाता है। यह विधि कम उम्र के (15 दिन से कम) पशुओं के लिए प्रयोग की जाती है। कास्टिक सोडा तथा कास्टिक पोटाश, पेस्ट या स्टिक के रूप में प्रयोग किए जाते हैं। बच्चे की श्रृंगकलिका के चारों

तरफ के बाल काटकर वैसलीन का लेप उपर नहीं कलिका के चारो ओर लगा दिया जाता है ताकि रासायनिक पदार्थ बहकर त्वचा को हानि न पहुँचा सके। रासायनिक पदार्थ को श्रृंगकलिका पर तब तक रगड़ते हैं जब तक लाल न दिखने लगे। रगड़ते समय आपरेटर को अपने हाथ से रासायनिक पदार्थ नहीं लगने देना चाहिए।

2. गर्म लोहे द्वारा–इसके लिए एक विशेष प्रकार के लोहे का प्रयोग किया जाता है। लोहे को गर्म करके बछड़े की सींग-कलिका को नष्ट कर दिया जाता है। लोहे को कोयले की अंगीठी पर रखकर गर्म किया जाता है। लोहे को बहुत अधिक समय तक एक ही जगह नहीं रखना चाहिए। सींगरोधन के लिए विद्युत द्वारा गर्म किये जाने वाले विद्युत सींग-रोधक (Electric dehorner) भी प्रयोग किये जाते हैं। यह विधि रक्त रहित होती है तथा किसी भी मौसम में इस्तेमाल की जा सकती है। इसका प्रयोग 2 से 3 सप्ताह के बच्चो के लिए किया जाता है।

(3) आरी या कतरनी द्वारा–कम उम्र के पशुओं के सींग कतरनी द्वारा तथा प्रौढ़ पशुओं के सींग आरी द्वारा काटे जाते हैं। सींग काटने से पूर्व पशुओं को अच्छी तरह नियन्त्रित कर लेना चाहिए। छोटे पशुओं को खम्भे में बांधकर तथा बड़े पशुओं को गिराकर सींग काटना चाहिए। काटने के पश्चात् रक्त श्राव रोकने के लिए उसे दागना आवश्यक होता है।

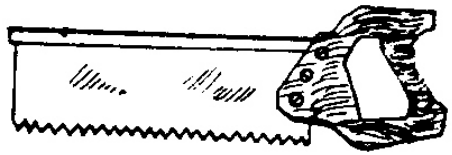

सींग काटने की आरी

(4) इलैस्ट्रेटर द्वारा–इस विधि में एक विशेष प्रकार के रबड़ के छल्ले का प्रयोग किया जाता है। इसको 5-10सेमी० लम्बे सींग वाले पशुओं पर इस्तेमाल किया जाता है। इलैस्ट्रेटर द्वारा रबड़ का छल्ला फैलाकर सींगों की जड़ में त्वचा को छूते हुए चढ़ा दिया जाता है। इससे पशु को काफी दर्द की अनुभूति होती है। इसके चढ़ाने के 3-6 सप्ताह में तथा कड़े सींग 8 सप्ताह में स्वत; ही गिर जाते हैं। यह विधि बहुत कम प्रयोग में लायी जाती है। चूकि इस विधि से स्थाई रूप से सींग रोधन नहीं हो पाता।

8.8 पशुओं को बधिया करना

नर पशुओं के वृषणों को निकालना अथवा निष्क्रिय बनाना बधियाकरण कहलाता है। कृषि कार्यों में प्रयोग किये जाने वाले बैल तथा भैंसा तथा मांस के लिए बकरों को बधिया किया जाता है। इसके निम्नलिखित लाभ है–

(1) पशु सीधे हो जाते हैं जिससे उन्हें आसानी से काबू किया जाता है।

(2) मांसार्थ पशुओं को बधिया करने से उनका मांस अधिक मुलायम रहता है तथा स्वादिष्ट हो जाता है।

(3) बधिया पशु के मांस में बधिया न किये गये पशु के मांस की तरह गंध नहीं होती जिससे उनके मांस की कीमत अधिक होती है।

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

CLPS - 03

पशु पालन : प्रबन्धन, प्रजनन एवं पशु रक्षा

खण्ड

04

पशु आवास, अभिलेख एवं अर्थव्यवस्था

इकाई-10

पशु आवास

इकाई-11

पशु फार्म के अभिलेख

इकाई-12

डेरी फार्म अर्थ व्यवस्था

परामर्श-समिति

प्रो0 केदार नाथ सिंह यादव	कुलपति - अध्यक्ष
डॉ0 हरीशचन्द्र जायसवाल	कार्यक्रम संयोजक
डॉ0 रत्नाकर शुक्ल	कुलसचिव - सचिव

परिमापक

प्रो0 जगदीश प्रसाद	संकाय प्रमुख, पशुपालन एवं पशु चिकित्सा संकाय इलाहाबाद एग्रीकल्चर युनिवर्सिटी, इलाहाबाद

सम्पादक

प्रो0 आर0 के0 यादव	अवकाश प्राप्त प्राचार्य एवं विभागाध्यक्ष पशुपालन एवं डेरी विज्ञान विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी

CLPS - 03 पशु पालन : प्रबन्धन, प्रजनन एवं पशु रक्षा

लेखक मंडल

खण्ड : एक	:	डॉ0 राम प्रवेश, तकनीकी सहायक, डॉ0 जयसिंह से संबद्ध पशुपालन एवं डेरी विज्ञान काशी हिन्दू-विश्व विद्यालय, काशी
दो	:	डॉ0 राम प्रवेश, तकनीकी सहायक, डॉ0 जयसिंह से संबद्ध पशुपालन एवं डेरी विज्ञान काशी हिन्दू-विश्व विद्यालय, काशी
तीन	:	डॉ0 शीतला प्रसाद वर्मा, वरिष्ठ प्रवक्ता (पशुपालन एवं दुग्ध विज्ञान) कुलभास्कर आश्रम स्नातकोत्तर महाविद्यालय, इलाहाबाद
चार	:	डॉ0 शीतला प्रसाद वर्मा, वरिष्ठ प्रवक्ता (पशुपालन एवं दुग्ध विज्ञान) कुलभास्कर आश्रम स्नातकोत्तर महाविद्यालय, इलाहाबाद
पाँच	:	डॉ0 शीतला प्रसाद वर्मा, वरिष्ठ प्रवक्ता (पशुपालन एवं दुग्ध विज्ञान) कुलभास्कर आश्रम स्नातकोत्तर महाविद्यालय, इलाहाबाद

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद की ओर से डॉ. रत्नाकर शुक्ल, कुलसचिव द्वारा प्रकाशित, तथा नितिन प्रिन्टर्स, 1, पुराना कटरा, इलाहाबाद द्वारा मुद्रित। 2006 फोन - 2548837

खण्ड 4 का परिचय : पशु आवास, अभिलेख एवं अर्थव्यवस्था

पशुधन उत्पादन प्रणाली के तृतीय प्रश्नपत्र का खण्ड चार पशु आवास, अभिलेख एवं अर्थ व्यवस्था से सम्बन्धित है। यह खण्ड तीन इकाइयों में विभक्त है। इकाई प्रथम में पशु आवास, इकाई द्वितीय में पशु फार्म के अभिलेख तथा इकाई तृतीय में डेरी फार्म अर्थव्यवस्था सम्बन्धी विवरण प्रस्तुत है।

इकाई दस के पशु आवास को 7-उपशीर्षक में बाँटा गया है।

(1) पशु आवास की आवश्यकता

(2) पशु आवास हेतु स्थान निर्धारण

(3) डेरी फार्म भवनों का समूहन

(4) डेरी फार्म भवनों का निर्माण

(5) पशुशाला के प्रकार

(6) गर्मियों में की जाने वाली अतिरिक्त व्यवस्था

(7) डेयरी पशुओं के आवास हेतु निर्धारित क्षेत्रफल

इकाई ग्यारह पशु फार्म के अभिलेख को 6 उपशीर्षक में बांटा गया है।

(1) पशु फार्म अभिलेख–आवश्यकता तथा लाभ

(2) अभिलेखों का वर्गीकरण

(3) अभिलेखों की सूची

(4) विभिन्न प्रकार के अभिलेख का प्रारूप

(5) अभिलेख परिरक्षण

(6) यूथ रजिस्ट्रेशन

इकाई बारह डेयरी फार्म अर्थव्यवस्था को 7 उपशीर्षक में बांटा गया है।

(1) दुग्ध उत्पादन लागत

(2) अचल लागत

(3) चल लागत

(4) दुग्ध विपणन

(5) दुग्ध मूल्य निर्धारण

(6) दुग्ध व्यवसाय विश्लेषण

(7) 10 संकर गायों के डेयरी फार्म का अर्थशास्त्र

इकाई 10 : पशु आवास

इकाई की रूपरेखा

10.1. प्रस्तावना

10.2. उद्देश्य

10.3. अच्छी पशु आवास व्यवस्था के लाभ

10.4. आवास व्यवस्था के आधार

10.5. पशु आवास हेतु स्थान निर्धारण

10.5.1 डेरी फार्म भवनों का समूहन

10.6.0 डेरी फार्म भवनों का निर्माण

10.6.1 पशुशाला निर्माण

10.6.1.1 पशुशाला के प्रकार

(i) मुँह से मुँह पद्धति

(ii) पूँछ से पूँछ पद्धति

10.6.2 इकहरे बाड़े की बनावट

10.6.3 दोहरे बाड़े की बनावट

10.6.4 आदर्श पशु आवास

10.6.5 ब्याने के कमरे

10.7.1 बछड़ा गृह

10.7.7 सांड़ गृह

10.7.8. सूखी गायों के लिए बाड़े

10.7.9 बछिया गृह

10.8 जरूरत के अन्य भवन

10.9 गर्मियों में की जाने वाली अतिरिक्त व्यवस्था

10.10 डेयरी पशुओं के आवास हेतु निर्धारित क्षेत्रफल

10.11 सारांश

10.12 उपयोगी पुस्तकें

10.13 संबंधित प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

पशुपालक ज्यादा ध्यान पशु पोषण व पशु चिकित्सा पर देते हैं परन्तु पशुओं की आवास व्यवस्था को लोग सामान्यतया नजरअन्दाज कर देते हैं। प्राचीन काल में पशुओं को पालतू बनाए के बाद मनुष्य का ध्यान मौसम व जलवायु के प्रतिकूल प्रभावों से बचाने हेतु तथा उनसे अधिकतम उत्पादन

लेने हेतु पशु आवास की ओर आकर्षित हुआ। उचित आवास की व्यवस्था न होने पर पशु की समस्त ऊर्जा शारीरिक तापमान को ही नियन्त्रित रखने में खर्च हो जाती है जिससे पशु पालक पशु की पूरी आनुवंशिक क्षमता के अनुसार उत्पादन नहीं प्राप्त कर पाता है। अत: हम कह सकते हैं कि पशुओं में वृद्धि और अधिकतम उत्पादन लेने में अच्छी आवास व्यवस्था का उतना ही योगदान है जितना कि प्रजनन, पोषण व चिकित्सा का है।

उत्तम आवास व्यवस्था से पशु उत्पादन क्षमता में वृद्धि होती है फिर भी अधिकतर पशु पालक बिना किसी विशेषज्ञ की सलाह के मनमाना पशु आवास बना लेते हैं।

वैसे तो डेरी पशुओं के लिए खुली आवास व्यवस्था उचित मानी गयी है। इस व्यवस्था में पशुओं को खुले क्षेत्र में रखा जाता है, इसमें थोड़ा स्थान ढका हुआ आश्रय स्थल के रूप में होता है। जिससे कि आवश्यकता पड़ने पर पशु अन्दर जा सके। परन्तु व्यावसायिक स्तर पर डेरी फार्म हेतु परम्परागत आवास व्यवस्था को ज्यादा उचित समझा जाता है।

इस इकाई में डेरी भवनों की आवश्यकता, डेरी भवन हेतु स्थान निर्धारण के घटक, डेरी भवनों का निर्माण तथा पशुओं के लिए आवश्यक स्थान तथा आदर्श पशुघर के बारे में जानकारी दी गयी है।

10.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़कर शिक्षार्थी यह जानने व समझने में सक्षम हो सकेंगे कि–

1. आदर्श पशु घर बनाना–साफ व सुविधा जनक आवासीय सुविधा प्रदान करना।
2. पशुओं को तेज सूर्य की गर्मी, बरसात, गर्म व ठंडी हवाओं के कुप्रभाव से बचाना।
3. सस्ती अच्छी आवास सुविधा प्रदान करना।
4. पशुओं को चोरी तथा जंगली जानवरों से बचाव करना।
5. पशुओं की उत्पादकता व उर्वरता को बनाये रखना।
6. अच्छे स्वास्थ्य हेतु आवासीय व्यवस्था प्रदान करना।

10.3 अच्छी पशु आवास व्यवस्था के लाभ

अच्छी पशु आवास व्यवस्था के लाभ–

(1) दुग्ध उत्पादन में वृद्धि होती है।

(2) श्रम का कुशलतापूर्वक उपयोग किया जाता है।

(3) पशुओं का स्वास्थ्य अच्छा रहता है।

(4) उच्च गुणवत्ता वाले पदार्थों का उत्पादन होता है।

(5) पशु मृत्यु दर में कमी आती है।

(6) बीमारियां कम लगती है।

(7) बीमारियों पर नियन्त्रण तुलनात्मक आसानी से किया जा सकता है

(8) नियमित एवं उचित मात्रा में आहार उपलब्ध कराने में आसानी होती है।

10.4 आवास व्यवस्था के आधार

पशुओं के लिए आवास थोड़ा ऊँचे स्थान पर होना चाहिए ताकि उसके आस-पास पानी इकट्ठा न हो, साथ ही गोबर तथा मूत्र की भी आसानी से सफाई की जा सके। आवास आरामदायक हो तथा पशु के खाने-पीने एवं दुग्ध दोहन की समुचित व्यवस्था हो। गर्मियों एवं जाड़े में पशु आवास के अन्दर तेज हवायें नहीं आनी चाहिए फिर भी आवास हवादार तथा रोशनी युक्त होना चाहिए। पशु आवास ऐसा होना चाहिए कि पशुओं की देखभाल में श्रम कम से कम लगे, साफ-सफाई का विशेष प्रबन्ध किया जा सके, चोरी तथा अन्य जानवरों से दुर्घटना का भय न रहे तथा आस-पास उगायी गयी फसलों का नुकसान भी न होने पाये। आवास निर्माण में लागत कम से कम लगे तथा आवास के रखरखाव एवं देखभाल पर भी अधिक खर्च न होने पाये।

10.5 पशु आवास हेतु स्थान निर्धारण

डेरी पशुओं के लिए भवनों के निर्माण योजना बनाते समय उसकी बनावट तथा निर्माण में प्रयोग होने वाली सामग्री पर विशेष ध्यान देना चाहिए, क्योंकि इनका प्रभाव पशु के स्वास्थ्य, उनके उत्पादन, परिचारकों को आराम, मजदूरों की आर्थिकता तथा भवन के मूल्य पर पड़ता है। जहाँ तक हो सके डेरी भवन बहुत ही साधारण बनने चाहिए। डेरी भवन बनाते समय निम्न बातों पर ध्यान देना चाहिए।

(1) प्रति पशु फर्श स्थान (Floor space) तथा प्रति पशु घन जगह (Cubic space) पर्याप्त हो और इनके बीच समुचित अनुपात हो।

(2) समुचित अर्थ व्यवस्था

(3) बने हुए डेरी भवन न्यूनतम लागत के साथ अधिकतम सुविधा तथा अधिकतम आकर्षण हो।

(4) प्रकाश व्यवस्था एवं रोशनदानों (Ventilators) का समुचित प्रबन्ध हो।

(5) डेरी भवन निर्माण हेतु चुना गया स्थान उचित् हो।

(6) डेरी भवन की बनावट ऐसी हो जिससे पशुओं को खिलाने पिलाने एवं फर्श की सफाई आदि सहज ढंग से हो सके।

(7) जल निकास की समुचित व्यवस्था हो।

डेरी भवन बनाने हेतु मिट्टी का प्रकार– डेरी फार्म के भवनो जिस जमीन का चयन किया जाय, उसकी जमीन काफी ठोस, नमी रहित, समतल तथा ऊँची होनी चाहिए। जिससे भवन टिकाऊ हो सके। जमीन नीची रहने पर बरसात के दिनों में भवनों के आस-पास पानी भर जाता है।

सड़क की सुविधा– भवन मुख्य सड़क से 200-300 फुट दूर होना चाहिए। परन्तु डेरी फार्म अथवा पशुशाला तक पहुँचने का रास्ता समतल व पक्का होना चाहिए।

पानी की व्यवस्था– डेरी पशुओं हेतु भवन के लिए जिस स्थान का चुनाव किया जाय वहाँ स्वच्छ ताजे पानी की पूर्ण उपलब्धता होनी चाहिए।

जल निकास– डेरी भवन ऐसी भूमि पर स्थित हो जहाँ जल का निकास अच्छा हो। भवनों का निर्माण ऊँची व अच्छे जल निकास वाले स्थान पर बनवाने से निम्न लाभ होते हैं।

(1) साफ-सफाई अच्छी तरह हो सकती है।

(2) भवन देखने में सुन्दर लगते हैं।

(3) नमी से बचाव हो जाता है।

(4) भवन अधिक समय तक प्रयोग में लाये जा सकते हैं तथा टिकाऊ होते हैं।

धूप व हवा– डेरी भवनो का विन्यास (Arrangement) इस प्रकार करना चाहिए कि उसके अन्दर तक धूप व हवा का प्रवेश हो सके। धूप रोकने वाले वृक्षों को भवन के समीप से हटा देना चाहिए। खाद के गड्ढे, दूध रिकार्ड करने का कमरा, दुग्ध दोहन का कमरा इत्यादि बनाने से पहले वहाँ चलने वाली हवाओं की दिशा को भली-भाँति समझ लेना चाहिए।

ठंडी तथा गर्म हवाओं से बचाव हेतु भवनों के निकट उचित दूरी पर ऐसे वृक्ष लगाने चाहिए जो कि हवाओं को रोकने का काम करें। भवनों का विन्यास भी इस प्रकार करें कि उनके द्वारा नुकसान पहुँचाने वाली हवा का विच्छेदन हो सके।

प्रकाश व्यवस्था– पशु स्वास्थ्य एवं सफल पशुधन उत्पादन हेतु डेरी भवनों में प्रकाश का होना अनिवार्य है। अत: प्राकृतिक प्रकाश के लिए डेरी भवनों में रोशनदान व खिड़कियों की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए। फर्श स्थान के 1/10 वें भाग के बराबर स्थान खिड़कियों के लिए तथा 4 घनफुट स्थान प्रति पशु के हिसाब से पशुशाला में प्रकाश व वायु के आवागमन हेतु उपयुक्त समझा जाता है।

परिदृश्य– डेरी भवन के सामने वाला भाग सुन्दर व मनोहारी होना चाहिए। मुख्य डेरी भवन के सामने घास का लान, सुन्दर फूलों तथा लतादार बेलों से सुसज्जित होना चाहिए।

डेरी भवनों की प्रस्थिति–पशु स्वास्थ्य के दृष्टिकोण मं डेरी भवनों के परित: साफ-सफाई होनी चाहिए जिससे पशु व मनुष्य शुद्ध जलवायु में रहकर स्वास्थ्य लाभ ले सकें। डेरी के निकट क्षेत्र परजीवी कीड़ो आदि से मुक्त होना चाहिए।

श्रम व्यवस्था– डेरी फार्म की अर्थव्यवस्था लाभप्रद बनाने में यह बात काफी महत्वपूर्ण है कि वहाँ सस्ते परिश्रमी, ईमानदार तथा कुशल मजदूर पर्याप्त संख्या उपलब्ध हो सके।

बाजार व्यवस्था– डेरी भवन वहीं बनाने चाहिए, जहाँ डेरी में बनाई हुई वस्तुओं के लिए अच्छा, लाभदायक व बड़ा बाजार मिल सके साथ ही डेरी फार्म की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सस्ते मूल्य पर इन बाजारों में समय से वे वस्तुए मिल सकें।

10.5.1 डेरी फार्म भवनों का समूहन

एक आदर्श डेरी फार्म पर विभिन्न प्रकार के भवनो के समूहीकरण (Grouping) तथा विन्यास (Arrangement) की एक बहुत बड़ी समस्या है जिसकी योजना सभी प्रकार के लाभ-हानियों पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने के पश्चात ही बनानी चाहिए। भवनों के समूहीकरण तथा विन्यास की योजना बनाते समय निम्न बाते ध्यान में रखनी चाहिए।

(1) भवनों को आयताकार या वर्गाकार रुप में बनाया जाता है प्राय: वर्गाकार भवन अच्छे समझे जाते है। भवन निर्माण आयत अथवा वर्ग के तीन तरफ से करना चाहिए।

(2) आयत अथवा वर्ग के केन्द्र में ऐसे स्थान पर भवनों का निर्माण करना चाहिए। जहाँ से अन्य भवनों तक कम समय में आसानी से पहुँचा जा सके।

(3) भवनों का समूहीकरण इस प्रकार का होना चाहिए, ताकि प्रत्येक कार्य सरलतापूर्वक, पूर्व क्षमता से कम खर्चे पर तथा कम समय में किया जा सके।

(4) सफाई के लिहाज से नौकरो इत्यादि के मकान पशु खलिहान (Animal Barn) से दूर बनाने चाहिए।

(5) फार्म मैनेजर का मकान तथा कार्यालय ऐसे स्थान पर होना चाहिए जहाँ से वह फार्म पर होने वाले कार्यों पर दृष्टि रख सके।

(6) भवन निर्माण में ऐसी सामग्री का प्रयोग करें जिससे आग लगने का खतरा कम से कम रहे।

(7) दुग्ध गृह की दूरी पशु बाड़ा से कम से कम 50 फीट की दूरी पर होना चाहिए।

(8) सभी भवन एक ही दृष्टि से देखने पर सुन्दर दिखायी देने चाहिए।

(9) भवन निर्माण के समय यह ध्यान रखा जाय कि भविष्य में उनका विस्तार किया जा सके।

(10) हर दो भवनों के बीच कम से कम 50-50 फीट की दूरी होनी चाहिए।

(11) ऐसे भवन जिनमें एक जैसे अथवा मिलते जुलते कार्य होते हो एक साथ बनाना चाहिए। जैसे– दाना भण्डार, सूखी घास का शेड, दुग्धशाला, रिकार्ड का कमरा आदि।

डेरी के सभी भवनों को तीन मुख्य समूह में बाँटा जा सकता है।

(1) प्रथम समूह के अन्दर निम्न भवन एक साथ बनाये जाते हैं–

(क) बछड़ों एवं बछियों के लिए बाड़े, दुग्धशाला, दूध के रिकार्ड का कमरा, ब्याने के लिए बाड़े, सूखे पशुओं के लिए बाड़े सांड़-गृह, भण्डार, गैरेज, चारा काटने व चारा रखने के कमरे व अलगाव करने वाले बाड़े इत्यादि।

द्वितीय समूह के अन्तर्गत निम्नलिखित भवन एक साथ बनते हैं।

(ख) फार्म मैनेजर, पशु चिकित्सक तथा अन्य कर्मियों के आवास एवं पशु चिकित्सालय

तृतीय समूह के अन्तर्गत निम्नलिखित भवन बनाये जाते हैं।

(ग) दूध लेने व तौलने का प्लेटफार्म, दूध के स्टोरेज का कमरा तथा दूध सप्लाई करने का काउन्टर आदि।

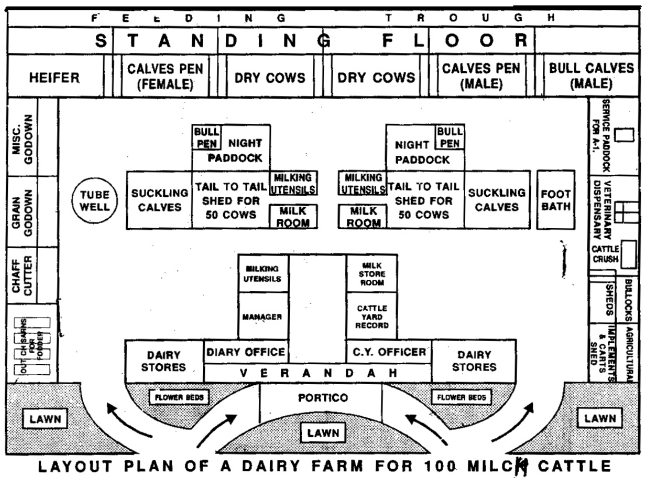

चित्र 100 गायों के पालन का रूपरेखा

10.6 डेरी फार्म भवनों का निर्माण

भिन्न-भिन्न प्रकार के पशुओं को अलग-अलग प्रकार के गृहों की आवश्यकता पड़ती है जो निम्नलिखित है।

(1) पशु शाला

(2) अलगाव और ब्याने के कमरे

(3) बछड़ा गृह

(4) सांड़ गृह

(5) बछिया गृह

(6) अन्य (जैसे सूखी गायों के लिए गृह आदि)

10.6.1 पशुशाला का निर्माण

पशुओं को बांधने के लिए कुल तीन प्रकार की विधियाँ प्रचालित है–

(क) दुग्धशाला विधि– जब पशु पशुशाला में बाँधे जायँ परन्तु उनका दुग्ध दोहन किसी अन्य विशेष कमरे में किया जाय।

(ख) खुली हवा अथवा बेल विधि– जब पशुओं को बाड़े मे न रखकर खुले मैदान में सचल बाड़े के अन्दर रखा जाय और वहीं उनका दुग्ध दोहन भी किया जाय।

(ग) पशुशाला विधि– जब पशु पशुशाला में बाँधे जाय और इनका दुग्धदोहन भी इसी पशुशाला में किया जाय। इस विधि में पशुशाला के अन्दर प्रत्येक पशु के लिए अलग-अलग विभाजन करके स्थान नियत कर देते हैं

हमरे देश में पशुओं को बांधने के लिए पशुशाला विधि अधिक उपयुक्त है और यही विधि प्रचालित भी है।

10.6.1.1 पशुशाला के प्रकार

अपने देश में दो प्रकार की पशुशालायें प्रचलन में है–

(1) एक पंक्ति वाली पशुशाला (इकहरा बाड़ा)

(2) दो पंक्ति वाली पशुशाला (दोहरा बाड़ा)

जब पशुओं की संख्या 20 से अधिक रहती है तो दोहरी या दो पंक्ति वाली पशुशाला बनायी जाती है दो पंक्ति वाली पशुशाला दो प्रकार से बनायी जाती है।

(क) मुँह से मुँह वाली पद्धति

(ख) पूँछ से पूँछ वाली पद्धति

मुँह से मुँह वाली पद्धति (Face to Face system)– इस पद्धति में पशु इस प्रकार बँधे रहते हैं कि दोनों अलग-अलग पंक्तियों में बंधे पशुओं का मुँह आमने-सामने रहता है।

मुँह से मुँह वाली पद्धति के लाभ

(1) एक साथ ही दोनों पंक्तियों के पशुओं को पशु चारे व दाने का वितरण किया जा सकता है।

(2) पशुओं के पिछले भाग पर प्रकाश अधिक पड़ने के कारण दुग्ध दोहन के समय ग्वाला थन की साफ-सफाई को ज्यादा अच्छी तरह देख सकता है।

(3) इस पद्धति में कम स्थान लगता है।

मुँह से मुँह वाली पद्धति से हानियाँ–

(1) गोबर हटाने के लिए अधिक श्रम करना पड़ता है।

(2) सांस से सम्बन्धित बीमारियों के फैलने का भय रहता है।

(ख) पूँछ से पूछ वाली पद्धति

इस पद्धति में पशु एक दूसरे के विपरीत दिशा में खड़े होते हैं।

पूँछ से पूँछ वाली पद्धति के लाभ

(1) पशु आवास की थोड़े समय में आसानी से सफाई हो जाती है।

(2) पशु के पिछले भाग में लगी हुई चोट तुरन्त दिखायी पड़ जाती है।

(3) एक पशु से दूसरे पशु को रोग लगने का भय कम रहता है।

(4) पशु में बीमारी फैलने का खतरा कम रहता है।

पूँछ से पूँछ पद्धति की हानियाँ

(1) पशुओं को चारा या दाना वितरण में अधिक समय व श्रम लगता है तथा एक ही बार में दोनों ओर के पशुओं को चारा-दाना एक साथ नहीं बांटा जा सकता है।

(2) सफाई तथा दूध निकालने में समुचित प्रकाश नहीं उपलब्ध हो पाता है।

10.6.2 इकहरे बाड़े अथवा एक पंक्ति वाले बाड़े का निर्माण

इकहरे बाड़े की पूरी चौड़ाई =10.14

चारा डालने का मार्ग =1.4 m

नाँद की चौड़ाई =1.07 m

पशु खड़े होने के स्थान की चौड़ाई =1.5 m

नाली की चौड़ाई =0.6 m

दीवाल =0.3 m

नोट – बाड़े की लम्बाई पशुओं की संख्या पर निर्भर करती है। अत: लम्बाई ज्ञात करने के लिए पशु संख्या को 4 फीट से गुणा कर बाड़े की लम्बाई फीट में ज्ञात कर लेते हैं।

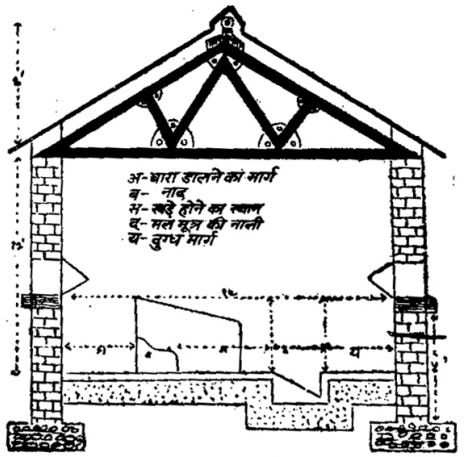

इकहरे बाड़े की आड़ी काट

10.6.3 दोहरी पंक्ति वाली पशुशाला की बनावट

(क) मुँह से मुँह वाली पद्धति के पशुशाला की बनावट

दीवाल	0.3 m
गोबर उठाने का रास्ता	1 m
नाली	0.6 m
खड़े होने का स्थान	1.5 m
नाद	1.07 m
चारा डालने का रास्ता	1.4 m
नाद	1.07 m
खड़े होने का स्थान	1.5 m
नाली	0.6 m
गोबर उठाने का रास्ता	1 m

चित्र- मुँह से मुँह वाली पद्धति के पशुशाला का चित्र

पशुओं की संख्या के अनुसार लम्बाई $(\mathrm{m}) = \text{पशु संख्या} \times \frac{1}{2} \times 1.2\ m$

चित्र मुँह से मुँह वाली पद्धति के पशुशाला का चित्र

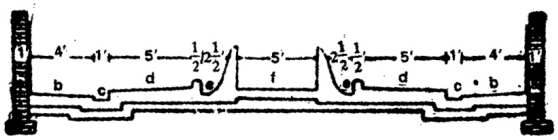

मुँह से मुँह वाली पद्धति की आड़ी काट

(a) दीवाल की मोटाई =0.3

(b) गोबर उठाने वाले रास्ते की चौड़ाई = 1 m

(c) नाली की चौड़ाई = 0.6 m

नाली की गहराई आगे = 0.2 m

(d) खड़े होने वाले स्थान की चौड़ाई = 1.5 m

(e) नाँद की चौड़ाई = 1.07 m

नॉद की ऊँचाई आगे = 0.4 m

नाँद की ऊँचाई पीछे = 0.8 m

(f) चारा डालने का रास्ता = 1.4 m

(ख) पूँछ से पूछ पद्धति वाली पशुशाला की बनावट

दो पंक्ति वाली पशुशाला (पूँछ से पूँछ पद्धति) की बनावट एक पंक्ति वाले बाड़े के आधार पर होती है अन्तर केवल इतना है कि इनमें दो पंक्तियों में अधिक पशु बाँधे जा सकते हैं। पूँछ से पूँछ वाली पद्धति के लाभों को देखते हुए वर्तमान पशुशाला को यही ढंग ज्यादा प्रचलित है।

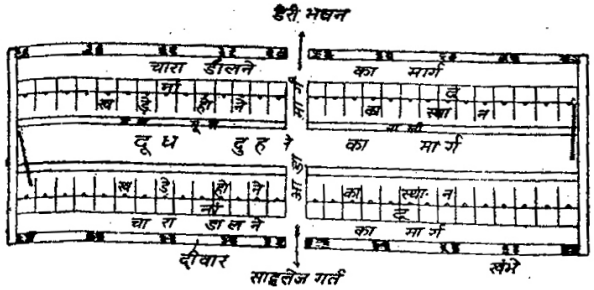

पूछ से पूछ पद्धति वाली पशुशाला का भू मानचित्र

(a) दीवाल की चौड़ाई = 0.3 m

(b) चारा डालने का मार्ग = 1.4 m

(c) नाद की चौड़ाई = 1.07 m

नांद की सामने की ऊँचाई = 0.4 m

नांद की पीछे की उचाई = 0.8 m

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त
विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

खण्ड

05

पशु स्वास्थ्य एवं पशुओं की बीमारियाँ

इकाई-13

पशु स्वास्थ्य प्रबन्धन

इकाई-14

पशुओं में जीवाणु एवं विषाणु से फैलने वाली बीमारियाँ

इकाई-15

उदर रोग, प्रजनन सम्बन्धी रोग तथा परजीवी रोग

परामर्श-समिति

प्रो0 केदार नाथ सिंह यादव	**कुलपति - अध्यक्ष**
डॉ0 हरीशचन्द्र जायसवाल	**कार्यक्रम संयोजक**
डॉ0 रत्नाकर शुक्ल	**कुलसचिव - सचिव**

परिमापक

प्रो0 जगदीश प्रसाद — संकाय प्रमुख, पशुपालन एवं पशु चिकित्सा संकाय इलाहाबाद एग्रीकल्चर युनिवर्सिटी, इलाहाबाद

सम्पादक

प्रो0 आर0 के0 यादव — अवकाश प्राप्त प्राचार्य एवं विभागाध्यक्ष पशुपालन एवं डेरी विज्ञान विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी

CLPS - 03 पशु पालन : प्रबन्धन, प्रजनन एवं पशु रक्षा

लेखक मंडल

खण्ड : एक	:	डॉ0 राम प्रवेश, तकनीकी सहायक, डॉ0 जयसिंह से संबद्ध पशुपालन एवं डेरी विज्ञान काशी हिन्दू-विश्व विद्यालय, काशी
दो	:	डॉ0 राम प्रवेश, तकनीकी सहायक, डॉ0 जयसिंह से संबद्ध पशुपालन एवं डेरी विज्ञान काशी हिन्दू-विश्व विद्यालय, काशी
तीन	:	डॉ0 शीतला प्रसाद वर्मा, वरिष्ठ प्रवक्ता (पशुपालन एवं दुग्ध विज्ञान) कुलभास्कर आश्रम स्नातकोत्तर महाविद्यालय, इलाहाबाद
चार	:	डॉ0 शीतला प्रसाद वर्मा, वरिष्ठ प्रवक्ता (पशुपालन एवं दुग्ध विज्ञान) कुलभास्कर आश्रम स्नातकोत्तर महाविद्यालय, इलाहाबाद
पाँच	:	डॉ0 शीतला प्रसाद वर्मा, वरिष्ठ प्रवक्ता (पशुपालन एवं दुग्ध विज्ञान) कुलभास्कर आश्रम स्नातकोत्तर महाविद्यालय, इलाहाबाद

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद की ओर से डॉ. रत्नाकर शुक्ल, कुलसचिव द्वारा प्रकाशित, तथा नितिन प्रिन्टर्स, 1, पुराना कटरा, इलाहाबाद द्वारा मुद्रित। 2006 फोन - 2548837

खण्ड 5 का परिचय : पशु स्वास्थ्य एवं पशुओं की बीमारियाँ

पशु स्वास्थ्य एवं पशुओं की बीमारियाँ खण्ड तीन इकाइयों में वर्णित है। इकाई प्रथम में पशु स्वास्थ्य प्रबन्धन, इकाई द्वितीय में पशुओं में जीवाणु एवं विषाणु से फैलने वाली बीमारियाँ तथा तृतीय इकाई में उदर रोग, प्रजनन सम्बन्धी रोग तथा परजीवी रोग सम्बन्धी जानकारियाँ वर्णित है।

इकाई तेरह पशु स्वास्थ्य प्रबन्धन 5 उपशीर्षकों में प्रस्तुत है–

(1) स्वस्थ एवं बीमार पशु के लक्षण
(2) बीमारियों के मुख्य कारण
(3) बीमारियों का वर्गीकरण
(4) पशु स्वास्थ्य प्रबन्धन
(5) शब्दावली

इकाई चौदह पशुओं में जीवाणु एवं विषाणु से फैलने वाली बीमारियाँ 13 उपशीर्षकों में प्रस्तुत हैं–

(1) गलाघोंटू
(2) लँगड़ी
(3) एन्थ्रैक्स
(4) सासंर्गिक गर्भपात
(5) थनैला रोग
(6) क्षय रोग
(7) बछड़ों की संक्रामक दस्त
(8) निमोनिया
(9) पुराना कीटाणु अतिसार
(10) पोंकनी
(11) खुरपका-मुँहपका
(12) चेचक
(13) रेबीज

इकाई पन्द्रह में उदर रोग, प्रजनन सम्बन्धी रोग एवं परजीवी रोग 15 उपशीर्षकों में प्रस्तुत है–

(1) अफारा
(2) रुमेन का गुम्ब हो जाना
(3) अजीर्ण रोग
(4) जठशोथ
(5) दस्त
(6) बछड़ों की सफेद दस्त
(7) बछड़ों की पौषाणिक दस्त
(8) नाभिरोग
(9) प्रजनन सम्बन्धी रोगो के असंक्रामक एवं अन्य कारण
(10) दुग्ध ज्वर
(11) गेडुआ रोग
(12) लिवर फ्लूक रोग
(13) वेवेसियासिस
(14) थिलेरियोसिस
(15) सर्रा

इकाई 13 : पशु स्वास्थ्य प्रबन्धन

इकाई की रूप रेखा

13.1 प्रस्तावना

13.2 उद्देश्य

13.3 स्वस्थ एवं बीमार पशु के लक्षण

13.4 बीमारियों के मुख्य कारण

13.5 बीमारियों का वर्गीकरण

13.6 पशु स्वास्थ्य प्रबन्धन

- 13.6.1 पशु सफाई
- 13.6.2 गोशाला की सफाई व विसंक्रमण
- 13.6.3 गोबर, गोमूत्र तथा स्लरी का निस्तारण
- 13.6.4 अच्छी आवासीय व्यवस्था
- 13.6.5 संतुलित आहार की उपलब्धता
- 13.6.6 स्वच्छ एवं ताजा जल की उपलब्धता
- 13.6.7 स्वस्थ पशुओं की खरीद
- 13.6.8 चारागाह में बदलाव
- 13.6.9 संगरोध
- 13.6.10 अलगाव
- 13.6.11 रोग की सूचना
- 13.6.12 पशु शव का निस्तारण
- 13.6.13 प्राथमिक उपचार
- 13.6.14 टीकाकरण

13.7 शब्दावली

13.8 सारांश

13.9 उपयोगी पुस्तकें

13.10 संबंधित प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

न्यायोचित प्रजनन, अवांछनीय एवं अलाभकारी पशुओं की छँटनी, पर्याप्त संतुलित आहार, अच्छा वातावरण एवं प्रबन्धन तथा वीमारियों की समयवत पहचान व शीघ्र उपचार सफल पशुधन उत्पादन प्रणाली की प्रधान कुंजियां है। पशुओं के प्रबन्धन में जरा भी असावधानी बीमारियों के लिए द्वार खोल सकती है परिणामस्वरूप आर्थिक नुकसान सहना पड़ सकता है। बीमारियों से पशुपालकों को

प्रतिवर्ष करोड़ों रुपये का नुकसान सहना पड़ता है। बीमारियों के कारण दुग्ध, मांस व ऊन उत्पादन में भारी कमी के अलावा पशुओं का शरीर कमजोर हो जाता है। कमजोर पशु को अतिरिक्त आहार देना पड़ता है और स्वस्थ पशुओं की तुलना में उनकी वृद्धि में अधिक समय लगता है। जो पशुपालक उपचार की तुलना में बीमारी से बचाव पर अधिक बल देते हैं उनके पशुओं की उत्पादन क्षमता अधिक होती है। यह सर्वविदित है कि बीमारियों की रोकथाम इलाज की तुलना में लाभदायक होता है इसी कारण कहा जाता है कि दवा से बचाव अधिक अच्छा होता है। पशुओं के स्वास्थ्य कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य हानिकारक बीमारियों की रोकथाम कर लाभान्वित करना है। वर्तमान में दुग्ध उत्पादन में बढ़ोत्तरी मुख्यत: विदेशी नस्लो से तैयार संकर नस्ल की गायों की संख्या में वृद्धि द्वारा की गयी है। इस प्रकार तैयार संकर नस्ल के पशु अधिक दूध देने में सक्षम होते हैं। गर्म देशों की बीमारियों और प्रतिकूल वातावरण के कारण रुग्णता और मृत्यु दर अधिक होने से संकर पशुओं का पालन तुलनात्मक ज्यादा कठिन है। इन परिस्थितियों में पशु स्वास्थ्य प्रबन्धन तथा बीमारियों के उपचार सम्बन्धी जानकारी अति महत्वपूर्ण है।

13.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययनोपरान्त शिक्षार्थी जानने में सक्षम हो सकेंगे–

(1) स्वस्थ एवं रोगग्रस्त पशुओं में विभेद करना।

(2) कारण, अवधि, प्रकोप आदि के आधार पर बीमारियों को वर्गीकृत करना।

(3) पशु स्वास्थ्य प्रबन्धन के सिद्धान्त।

(4) पशुओं की प्राथमिक चिकित्सा।

(5) पशुओं में टीकाकरण।

13.3 स्वस्थ एवं बीमार पशु के लक्षण

(1) स्वस्थ पशु देखने में ही स्मार्ट, चुस्त, क्रियाशील सक्रिय तथा चुस्त लगता है जबकि बीमार पशु निष्क्रिय तथा सुस्त प्रतीत होता है।

(2) स्वस्थ पशु सामान्यत: सिर उपर किये रहता है जबकि बीमार पशु अपना सिर झुकाये अथवा लटकाये रहता है।

(3) स्वस्थ पशु की आँखे चौड़ी, खुली हुई तथा चमकीली होती है जबकि बीमार पशु की आँखे मुदी हुई या अधखुली, सुस्त एवं आँखों के कोनो पर सफेद कीचड़ पाया जाता है।

(4) स्वस्थ पशु के मुँह व नाक से कोई श्राव नहीं निकलता जबकि बीमार पशु के कभी कभी श्राव निकलता है।

(5) स्वस्थ पशु की चाल (गति) सक्रियता युक्त एवं बीमार पशु की चाल अलसायी व कभी कभी लड़खड़ाहटयुक्त हो सकती है।

(6) स्वस्थ पशु बुलाने पर तुरन्त प्रतिक्रिया करता है परन्तु बीमार पशु देर में।

(7) स्वस्थ पशु का गोबर सामान्य जबकि बीमार पशु के गोबर में म्यूकस, मवाद, कड़ा/गीला या पानी जैसा या रक्त की उपस्थिति हो सकती है।

(8) स्वस्थ पशु की त्वचा के रोयें सामान्य तथा (Smooth) जबकि बीमार पशु के रोयें उठे हुए/खड़े तथा Rough होते हैं।

(9) स्वस्थ पशु के कान खड़े हुए अथवा सामान्य जबकि बीमार पशु के लटके हुए होते हैं।

(10) स्वस्थ पशु का थूथन गीला तथा बीमार पशु का सूखा रहता है।

(11) स्वस्थ पशु का दुग्ध उत्पादन सामान्य जबकि बीमार पशु का घट जाता है।

(12) स्वस्थ पशु का थन सामान्य जबकि बीमार पशु का कड़ा व सूजनयुक्त हो सकता है

(13) स्वस्थ पशु शान्त जबकि बीमार पशु सुस्त अथवा उत्तेजित हो सकता है।

(14) स्वस्थ पशु सामान्य रूप से चरता है जबकि बीमार पशु चरना कम कर देता है या छोड़ देता है।

(15) स्वस्थ पशु जुगाली करता है जबकि बीमार पशु जुगाली करना बन्द कर देता है।

(16) स्वस्थ पशु में आहार व पानी की ग्राह्यता सामान्य होती है जबकि बीमार पशु में कम हो जाती है।

(17) स्वस्थ पशु में भूख सामान्य रूप से लगती है बीमार पशु की भूख में कमी हो जाती है।

(18) स्वस्थ पशु (गाय/भैंस) की प्रतिमिनट नाड़ी दर 60-70 तथा बीमार पशु की 70 से अधिक होती है।

(19) स्वस्थ पशु का तापमान 38.5ºC होता है जबकि बीमार पशु का (दुग्ध ज्वर बीमारी को छोड़कर) इससे अधिक होता है।

(20) स्वस्थ पशु की श्वसन दर 12 से 20 प्रति मिनट जबकि बीमार पशु की अधिक होती है।

विभिन्न पशु जातियों में श्वसन, नाड़ी गति एवं तापमान

क्र०सं०	पशु	श्वसन/मिनट	नाड़ी/मिनट	तापमान ° F
1.	गाय	12-20	50-70	101.6
2.	भैंस	16-20	40-50	101.6
3.	बकरी	12-22	70-80	103.5
4.	भेड़	14-22	70-80	102.5
5.	घोड़ा	8-16	30-60	99.4
6.	ऊंट	8-12	32-50	99.5
7.	मुर्गी	13-38	120-160	106.6
8.	मनुष्य	15-25	70-72	98.4

13.4 बीमारी के मुख्य कारण

बीमारी के मुख्य कारण

पुर: प्रवर्तक कारण
(1) लिंग
(2) उम्र
(3) अल्प स्थान में ज्यादा पशु संख्या
(4) प्रबन्धन में कमी
(5) असावधानी युक्त एवं अनिश्चित प्रजनन
(7) अस्वस्थकर आवास
(8) दूषित आहार एवं जल
(9) दूषित वातावरण
(10) सफाई में कमी
(11) जल निकास में दोष एवं प्रकाश व्यवस्था
(12) असंतुलित आहार

उत्तेजक कारण
(1) जीवाणु
(2) विषाणु
(3) परजीवी (वाह्य एवं अन्त:)
(4) कवक
(5) रसायन
(6) पोषक तत्वों की कमी
(7) विषाक्तता

13.5 बीमारियों का वर्गीकरण

इस इकाई में पशु रोगों का पांच प्रकार से वर्गीकरण किया गया है।

(अ) रोग के कारण के आधार पर
(ब) रोग के प्रकोप तथा अवधि के आधार पर
(स) रोग प्रारम्भ होने के ढंग के आधार पर
(द) क्षेत्र व जाति के आधार पर
(य) दुधारु पशुओं की बीमारियों का कारण के आधार पर।

(अ) कारण के आधार पर वर्गीकरण

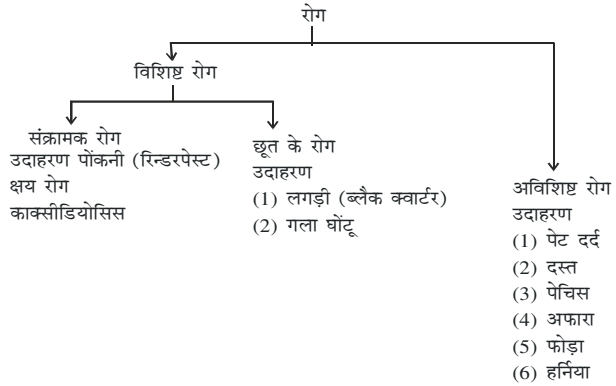

(ब) प्रकोप तथा अवधि के आधार पर वर्गीकरण

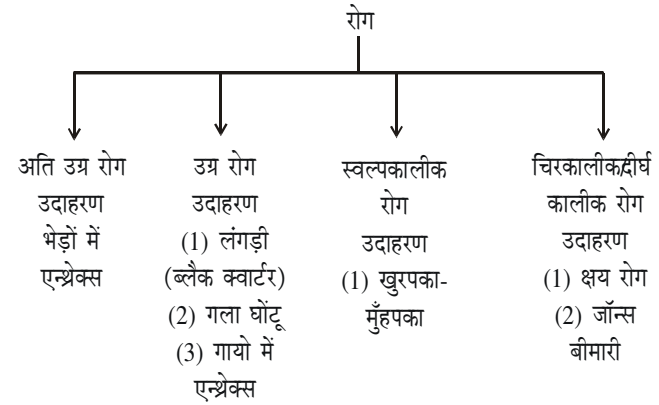

(स) रोग प्रारम्भ होने के ढंग के आधार पर वर्गीकरण

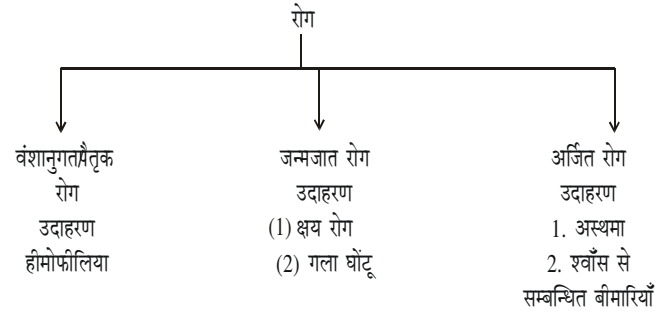

(द) क्षेत्र व जाति के आधार पर रोग का वर्गीकरण

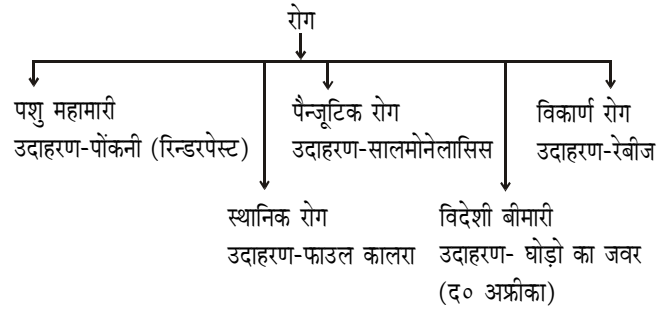

(य) दुधारु पशुओं की सामान्य बीमारियों का वर्गीकरण के आधार पर वर्गीकरण